# राम-गीतिका

र. श. केलकर



# राम-गीतिका

हिन्दी प्रचारक संस्थान
पो० बा० १०६, पिशाचमोचन
वाराणसी–२२१००१



मू० ८.००

हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी–२२१००१ के लिए विजय प्रकाश बेरी द्वारा प्रकाशित तथा ज्ञानोदय मुद्रणालय, एस ५/४९–१ लछिमनपुर, वाराणसी में मुद्रित।

सन् १९८३

# राम-गीतिका



र० श० केलकर
११२ रवीन्द्र नगर
नई दिल्ली, ११०००३

आत्मरूप

एवं

ज्ञान, भक्ति और कर्म के समन्वय प्रदर्शी

सद्गुरु परमाराध्य

प० पू० श्री स्वामी राम

के

पावन चरण-कमलों में

दीन सन्तान का

सप्रेम उत्सर्ग

भक्तवत्सले त्रिपुर सुन्दरी
सकल सिद्धि सुख दाते
शब्दवाहिनी, शेषशायिनी
असुर मर्दिनी माते
गुरुपद पंकज भाव भृङ्ग ये
शब्द स्खलित तुतलाते
प्रेम-शक्ति से जन-जीवन को
शान्त करें अकुलाते

भर दे शक्ति विधाते

# प्रस्तावना

फरवरी, १९६२ की बात है। सोमवार का दिन था और शाम का समय। मैं अपने ड्राइङ्ग रूम में बैठा सामने सड़क की ओर देख रहा था। दृश्य वही था जो मैं नित्य ही देखा करता था, परन्तु आज मुझे लगा कि मुझ समेत वातावरण के समस्त उपकरणों में एक ही चैतन्य उद्भासित हो रहा है। क्षण भर के लिए मैंने अनुभव किया कि सृष्टि के यह समस्त उपकरण उपाधि मात्र से भिन्न हैं। इस विचार के साथ ही भारतीय दर्शन का यह कथन कि सृष्टि में जो भी जड़ और चेतन है वह सबका सब एक सच्चिदानन्द स्वरूप सत्ता से ही व्याप्त है, उसमें कहीं भी कोई विरोध नहीं है, क्षण भर के लिए मेरे सम्मुख साकार हो उठा और मैं इस दिव्य अनुभव का आनन्द लूटने लगा ( मैं समझता हूँ कि ऐसे क्षणिक अनुभव प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में अवश्य ही आते होंगे, परन्तु वह अपनी भौतिक समस्याओं में इतना उलझा रहता है कि वह उनसे समरस नहीं हो सकता ) ठीक यही बात मेरे साथ भी हुई। आनन्द का क्षण आया और बीत गया, परन्तु एक अवसाद बना रहा।

अवसादजनित इस रिक्तता के क्षण में मेरी दृष्टि सहज ही सामने पुस्तकों के रैक पर पड़ी और 'ईश्वर साक्षात्कार और योग सिद्धि' नामक मराठी पुस्तक पर अटक गई। इस पुस्तक में विद्वान एवं सुप्रसिद्ध मराठी लेखक श्री भट ने अध्यात्म की बड़ी ही छानबीन से चर्चा की है और अनेक व्यक्तियों के आध्यात्मिक अनुभवों को संकलित किया है। मैंने पुस्तक उठा ली और पन्ने उलटने लगा। लोगों के विभिन्न आध्यात्मिक अनुभवों को पढ़ते समय मुझे लगा कि मैं सचमुच ही अभागा हूँ जो न तो अभी तक किसी संत के सम्पर्क में आया हूँ और न ही कोई दैवी चमत्कार ही मैंने देखा है। इस विचार के साथ ही मेरी आँखें भर आईं और पुस्तक के शब्द अस्पष्ट होने लगे। इस दशा में मैं अवश्य ही कुछ क्षणों तक बैठा रहा हूँगा, क्योंकि जब किसी ने मुझे पुकारा तो मैं हड़बड़ा उठा। पुकारने वाले महाशय मेरे एक चिरपरिचित सहृदय मित्र थे जो एक सरकारी अधिकारी होने के साथ-साथ अपना काफी समय अध्यात्म-चिंतन में बिताया करते थे। उन्हें देखते ही जो पहला प्रश्न मैंने उनसे किया वह यह था—

"भई, योग सीखने की इच्छा हो रही है पर मैं किसी बाजारी योगाश्रम में नहीं जाना चाहता—चाहता हूँ कोई सिद्ध पुरुष जो मेरा मार्गदर्शन कर सके।"

वे बोले—

"बड़े अच्छे मौके पर तुमने सवाल किया। ऐसे एक महात्मा को मैं जानता हूँ और मजे की बात यह है कि आजकल वे यहीं आए हुए हैं और किदवई नगर में एक रिटायर्ड एजूकेशनल एडवाइजर साहब के यहाँ ठहरे हैं। उनसे क्यों नहीं मिल लेते ?"

मैंने कहा—"पता नहीं, वे मुझसे मिलना चाहेंगे या नहीं। अच्छा यही होगा कि आप उनसे मिलकर मेरे लिए समय ले लें।"

उन्होंने स्वीकार कर लिया और कहा कि वे कल अवश्य उनसे मिलेंगे और मेरे लिए समय ले लेंगे। थोड़ी देर बाद वे चले गए और मैं उन महात्मा से भेंट की संभावनाओं पर विचार करने लगा। मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब कुछ देर के बाद मेरे वही मित्र फिर से आ धमके और कहने लगे—

"भई मैं उनसे मिल आया हूँ, वे तुमसे अभी मिलना चाहते हैं, चलोगे ?"

मैं भी तो यही चाहता था। तुरन्त तैयार हो गया। परन्तु एक बात मेरे मन में बार-बार आती रही कि मेरे मित्र तो उनसे कल मिलने वाले थे परन्तु घर न जाकर आज ही सीधे उनके पास लगभग ५ मील अपनी गाड़ी से जाने के लिए वे क्योंकर प्रेरित हुए ? इसका उत्तर मेरे पास नहीं था।

जिन महात्मा से मैं मिला वे थे स्वामी राम। स्वामी जी को देखते ही मैंने जिस आनन्द का अनुभव किया उसका सही-सही वर्णन करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं। मैं समझा था स्वामी जी कोई गेरुआ वस्त्रधारी, शिष्य-मंडली से घिरे हुए संन्यासी होंगे तथा आतंकित करने वाली दार्शनिक बातें करेंगे। परन्तु जो मैंने देखा वह इसके ठीक विपरीत था। वे एक सफेद तहमत लगाए, सफेद कुर्ता पहने मृगाजिन पर सिद्धासन लगाए शान्त भाव से बैठे हुए थे। उनके व्यक्तित्व से आनन्द ही आनन्द टपक रहा था, जिसके कारण कमरे की प्रत्येक वस्तु निखर उठी थी। कहीं भी कोई आडम्बर नहीं। सर्वत्र एक सादगी विद्यमान थी जिसमें कृत्रिमता का कहीं भी कोई चिन्ह नहीं था। उनके मुखमण्डल से झलकने वाले तेज और उनके चारों

ओर विद्यमान आनन्दमय वातावरण को क्षण भर के लिए भुला दिया जाए तो स्वामी जी में और एक साधारण व्यक्ति में कहीं भी कोई अन्तर नहीं दिखाई देता था।

मुझे देखते ही उन्होंने मधुर मुस्कान के साथ स्नेहसिक्त शब्दों में सामने आसन की ओर इङ्गित करते हुए मेरा स्वागत किया। मेरा संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर लेने के बाद स्वामी जी ने अपनी मधुर वाणी में हमें अपना एक भजन सुनाया! मैं नहीं जानता था कि स्वामी जी एक सिद्धहस्त कवि भी हैं और उन्होंने अपनी लगभग सभी यौगिक आत्मा अनुभूतियों को कवित्व के साथ उनका मणिकांचन योग करके लिपिबद्ध कर रखा है। अनुभूति की गहराई और काव्य के सभी गुण उनके पदों में विद्यमान हैं ही साथ ही ईश्वर ने उन्हें इतना सुरीला स्वर दिया हुआ है कि उनके भजन सुनते ही श्रोता आत्मविभोर हो जाता है। भजन के बाद स्वामी जी ने मुझसे दूसरे दिन प्रातः 'सिटिंग' के लिए आने के लिए कहा, ताकि ध्यान के लिए वे मुझे अपने सामने बैठा सकें। इसे मैं स्वामी जी का अपने प्रति विशेष अनुग्रह ही समझता हूँ, क्योंकि न तो योग के बारे में मुझे कोई जानकारी थी और न ही मैंने उनसे 'सिटिंग' माँगी थी। पर वे प्रथम भेंट में ही अवश्य मेरे बारे में सब कुछ जान गए होंगे अन्यथा इस नये मार्ग की ओर वे मुझे इतने सहज ढंग से प्रेरित नहीं करते। स्वामी जी ने दो दिन मुझे सिटिंग्स दिए। इन दो बैठकों में मैंने अपने शरीर में जिन आंतरिक क्रियाओं का अनुभव किया और जो दृश्य देखे उन्हें शब्दों में सही-सही व्यक्त करना असम्भव है। इतने सूक्ष्म अनुभव भाषा में व्यक्त हो ही नहीं सकते। वे तो केवल अनुभूति के ही विषय हैं, इसीलिए शायद संतों ने इस अनुभूति को 'गूंगे का गुड़' कहा है।

**आरम्भिक जीवन**

स्वामी जी का जन्म अकोला जिले के तेल्हारा नामक गांव में शके १८३५ ज्येष्ठ शुक्ल दशमी को एक भद्र ब्राह्मण कुल में हुआ था। कहा जाता है कि स्वामी जी के भावी जीवन के विषय में उनकी जन्म-कुण्डली देखकर एक ज्योतिषी ने पहले ही भविष्यवाणी कर रखी थी। 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' कथनानुसार स्वामी जी बचपन से ही शांत, हंसमुख, चतुर, निर्भय, देशभक्त और स्वाभिमानी थे। इण्टरमीडिएट परीक्षा पास कर लेने के बाद स्वामी जी ने पहले अकोला मिल में नौकरी कर ली और तत्पश्चात वे कानपुर की एक

मिल में साईजिंग मास्टर बन गए। उस सस्ताई के काल में भी वे १५०) माहवार वेतन पाते थे। बाद में कुछ काल तक उन्होंने बम्बई में भी नौकरी की। सतत परोपकार, व्यायाम और एकान्तवास में घण्टों स्तोत्र-पाठ करनेवाला और पारमार्थिक चर्चा में अपना अधिकतर समय व्यतीत करने वाला यह होनहार युवक नौकरी-पेशे के साधारण जीवन से कैसे संतुष्ट हो सकता था ? इसी बीच स्वामी जी बीमार पड़ गए और नौकरी से इस्तीफा देकर अकोला लौट आए। अकोला आकर और केवल मठे पर निर्वाह करके वे रात को भगवान दत्तात्रेय के सम्मुख तीन चार घण्टे भजन गाया करते थे। इस समय उन्हें एक ही रट लगी हुई थी—

'जिकड़े नेतील सद्‌गुरु त्याचे मांगे जाईन''
( जहां भी सद्‌गुरु ले जाएंगे उन्हीं के पीछे जाऊँगा। )

यह भजन गाते समय स्वामी जी का कंठ सद्रवित हो उठता, आँखों से अश्रुधारा बहने लगती और प्रभु के ध्यान में वे तल्लीन हो जाते थे। इसी बीच नौकरी करने के इरादे से ग्वालियर जा पहुँचे, परन्तु वहाँ कोई अच्छी नौकरी न मिलने के कारण घर लौट जाने के लिए उन्हें अपने भाई से रुपये मांगने पड़े। अपनी सब कमाई घर दे देने वाले व्यक्ति को अपने लिए दूसरे के सामने हाथ फैलाने का यह पहला ही अवसर था। इससे उनके स्वाभिमान को निश्चय ही ठेस पहुँची। इसी बीच स्वामी जी ने निराहार रहकर तीन दिन में गुरु-चरित्र का पारायण करना तय किया। दो दिन बीत गए। जल के अतिरिक्त उन्होंने और कुछ भी ग्रहण नहीं किया। परन्तु इससे उनकी शान्ति और आनन्द में जरा भी अन्तर नहीं पड़ा। तीसरे दिन पारायण समाप्त हुआ। ब्राह्मण भोजन के साथ पारना करने की इच्छा थी, पर पास में पैसा नहीं था और दूसरे के आगे हाथ फैलाना उनके सिद्धान्तों के विरुद्ध था। अतः मन मसोसकर एकांत सेवन के लिए वे जयाजी पार्क की ओर निकल पड़े।

**दिव्य देहधारी पुरुष के दर्शन**

अंधेरा होने लगा था। स्वामीजी प्रभु के ध्यान में मस्त बैठे हुए थे। अकस्मात् रात के ८–९ बजे के लगभग एक छह-साढ़े-छह फुट लम्बा, दाढ़ीवाला दिव्य देहधारी पुरुष कंबल ओढ़े आवाज देता हुआ प्रकट हुआ और स्वामीजी से कहने लगा, 'मैं साधू हूँ, मुझे भूख लगी

है, भोजन दिला दो।' साधु को देखकर स्वामी जी को आश्चर्य हुआ और साथ ही दुख भी। दुख इसलिए कि जेब में एक पैसा भी नहीं था। मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ ? मेरे पास पहने हुए कोट के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।'. साधु तो जैसे परीक्षा ही लेना चाहता था, बोला, 'वही दे दो।' स्वामी जी ने तुरन्त कोट उतारकर दे दिया और कोट लेकर वह क्षण-भर में अदृश्य भी हो गया। जाते-जाते इतना अवश्य कह गया, 'बेटा सोना चाँदी में खेलो।' साधु के वचनों का पारमार्थिक अर्थ है कि सूर्य चन्द्र पर विजयी हो या यौगिक भाषा में इड़ा और पिंगला नाड़ियों पर प्रभुत्व प्राप्त करो। स्वामी जी आवाक देखते रहे, फिर उठकर साधु को ढूंढ़ने का भी प्रयत्न किया पर उसे तो उनके अतिरिक्त और किसी ने देखा ही न था फिर पता कौन देता ? यही दिव्य देहधारी अलौकिक पुरुष स्वामी के सच्चे गुरु हैं। इसके वाद भी इन दिव्य महात्मा का दर्शन स्वामी जी को तीन-चार बार हुआ है।

इस साक्षात्कार ने स्वामी जी के जीवन की दिशा ही बदल दी। विरक्त होकर उसी अवस्था में उन्होंने तत्काल घर छोड़ दिया। इसके वाद की स्वामी जी की यात्राओं के अनुभवों को संकलित किया जाए तो एक समग्र ग्रन्थ तैयार हो जाएगा। ग्वालियर पैदल चलकर मथुरा दिल्ली, हरिद्वार होते हुए वे चामुण्डा जंगल में एकान्त सेवन के लिए पहुंच गए। सोमवार का दिन था, स्नान के वाद स्वामी जी शिवपूजा में मग्न हो गए। तीन दिन तक भूख प्यास का स्मरण ही नहीं रहा। तीसरे दिन वही दिव्य साधु फिर प्रकट हुआ और कहने लगा, 'तू क्यों इतना कष्ट उठा रहा है। तेरी व्यवस्था हो चुकी है, तू सोने चाँदी में खेल, सूर्य चंद्र अथवा प्राण अपान वायु पर विजयी होकर योगारूढ़ हो जा, ऋद्धि-सिद्धि तुझे जरूर मिलेगी, इतना कहकर वह अंतर्धान हो गया। फिर स्वामी जी फरीदाबाद में दक्षिणी बाबा की कुटी, माण्डव्याश्रम, भूतनाथ की गुफा, गगनानन्द की गुफा आदि स्थानों पर निवास करके गंगोत्री, बद्रीनारायण होते हुए काश्मीर जा पहुँचे। अमरनाथ की स्वामी जी ने सत्रह वार पैदल यात्रा की है तथा भारत के सभी तीर्थ-स्थानों का दर्शन किया है।

**योग साधना का प्रारम्भ**

अनूप शहर से १५ मील दूर माण्डव्य ऋषि का आश्रम है जिसकी स्थापना स्वामी कृष्णानन्द जी नामक किसी महान योगी ने की थी।

इन्हीं के शिष्य स्वामी योगानंद अष्टांग योग सिद्धि तथा तपश्चर्या के लिए उस प्रदेश में विशेष प्रसिद्ध थे। स्वामी योगानन्द जी का बहुत बड़ा सम्प्रदाय था, परन्तु वे स्वामी राम जैसे सतेज और चतुर व्यक्ति पर बहुत प्रसन्न थे और समझते थे कि उनके पश्चात् वे ही उनका कार्यभार संभालेंगे। परन्तु त्याग की मूर्ति स्वामी जी को किसी का शिष्य बनकर साम्प्रदायिक गुटों में रहना पसन्द नहीं था। उन्हें प्रभु चिन्तन और अध्यात्मिक उन्नति के सिवाय और किसी भी बात में रुचि नहीं थी। आश्रम को तो वे प्रपंच जाल समझकर उससे घृणा करते थे। पूर्व संस्कार वश मेधा और तीव्र तपस्या से अष्टांग योग साधन में वे प्रगति कर चुके थे। इस मनोवृत्ति के कारण तथा दैवी पुरुष की प्रेरणा से विशेष साधना के लिए आश्रम छोड़ने का निश्चय जब उन्होंने योगानन्द जी को सुनाया, तो उन्हें गहरा धक्का लगा। वे स्वामी जी को किसी भी दशा में नहीं छोड़ना चाहते थे। पर स्वामी जी का निर्णय अटल था। स्वामी योगानन्द जी ने स्वामी जी को रोकने के लिए अपने यौगिक बल से कई बाधाएं उपस्थित कीं, पर स्वामी जी पर उनका जरा भी असर नहीं हुआ। निश्चित समय पर उन्होंने आश्रम छोड़ ही दिया।

**आत्म त्याग तथा लोक संग्रह**

संसारका प्रत्येक व्यक्ति समय-समय पर आत्म त्याग की बातें करता है, पर वह केवल शब्द प्रयोग होता है, क्योंकि समय आने पर जीवन के प्रति मोह की ही जय होती है। यदि स्वामी जी के जीवन की छानबीन की जाय तो कई ऐसे प्रसंग हाथ लगेंगे जब वे बिना व्यक्त किए मृत्यु का आव्हान करते हुए शरीर का त्याग करने के लिए प्रस्तुत रहे हैं। एक समय किसी ने अपने पुत्र को मौत से बचाने के लिए स्वामी जी से प्रार्थना की। स्वयं देह त्याग किए बिना ऐसा कर सकना असम्भव जानकर वे परोपकारार्थ देह त्याग करने के लिए तैयार हो गए। परन्तु प्रभु की इच्छा कुछ और ही थी। इसीलिए विष-पान कर लेने के बाद भी विष का उन पर असर नहीं हुआ और उल्टी के रास्ते वह वैसा ही बाहर निकल आया। उस समय स्वामी जी मृत्युपथगामी उस युवा से एक हजार मील दूरी पर थे। फिर भी उनकी संकल्प-शक्ति का प्रभाव अत्यन्त आश्चर्य जनक हुआ। वह युवकजो अत्यन्त नास्तिक था अपनी रुग्ण अवस्था में भी प्रेमपूर्वक

'श्रीराम' का घोष करता हुआ आनन्द से मृत्यु के स्वागत के लिए तैयार हो गया।

१९४२ में काश्मीर के भयानक अकाल के समय वहाँ की जनता भूखों मरने लगी थी। स्वामीं जी ने अपने आश्रम का सब चावल जनता में बाँट दिया और स्वयं सात दिन केवल पानी पीकर 'अब तू आनन्द से सो जा' का संकल्प करके मृत्यु की प्रतीक्षा करने लगे। अपनी अमृत वाणी से स्वामी जी ने काश्मीर के अनेक हिन्दू-मुसलमानों तथा विभिन्न प्रांतों के असंख्य लोगों के साथ कई विदेशियों का मार्ग दर्शन किया है।

**आचार, वाक्चातुर्य और काव्य-रचना**

मनसा वाचा कर्मणा स्वामी जी सादगी की साक्षात् मूर्ति हैं। मनुष्य मात्र के प्रति उनमें एक सहज वात्सल्य विद्यमान रहता है और उसके कल्याण की चिंता उन्हें बराबर बनी रहती है। स्वामी जी के लिए गरीब-अमीर, छोटे-बड़े, स्त्री पुरुष सब एक समान हैं। क्योंकि वे सब प्रभु की ही साक्षात् मूर्तियाँ हैं। इस पुनीत भावना के कारण ही असंख्य लोगों का मार्ग दर्शन करते हुए भी वे किसी को भी अपना शिष्य नहीं बनाते। गुरु और शिष्य की भावना तो उन्हें छू तक नहीं गई है। उनके लिए सभी उनके मित्र हैं, क्योंकि सभी भगवान के बन्दे हैं।

गुरुप्रसाद, शास्त्रप्रचीति तथा आत्मानुभव ये तीनों आत्म-साक्षात्कार की कसौटियां मानी जाती हैं। स्वामी जी को गुरुकृपा तो प्राप्त थी ही, अतः उन्होंने दशोपनिषद्, शिव-पुराण, लिंग-पुराण, रामायण, महाभारत, गीता आदि ग्रंथों का सूक्ष्म अध्ययन करके शास्त्रकारों की अनुभूति से उसे मिलाकर अपने आत्मानुभव की जाँच कर ली। इसीलिए उनके प्रवचनों में कोरे पाण्डित्य के दर्शन नहीं होते, वरन् एक दिव्य आनन्द की पीयूषमयी धारा भी सहज ही बहती रहती है, जिसमें अगवाहन करके श्रोता आत्मविभोर हो जाते हैं। अनेक विद्वान इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि आज सारे उपनिषदों और गीता का स्वानुभूति भाष्य केवल स्वामी जी ही कर सकते हैं। गीता के एक-एक श्लोक को लेकर वे प्रायः छह-छह आठ-आठ घण्टे बोलते हैं और श्रोताओं को मंत्र मुग्ध कर देते हैं।

स्वामी जी ने 'राम तरंग माला', 'स्मृति कुंज', 'दृष्टियोग', आरण्यकाण्ड', 'लंका-यात्रा', आदि अनेक ग्रन्थ लिखे हैं जो सब छप चुके

हैं। 'राम तरंग माला' में स्वामी जी की आत्मानुभूतियाँ ही काव्यबद्ध हुई हैं। यह सभी गेय पद हैं तथा उनमें उच्च काव्य के सभी गुण विद्यमान हैं। एक छोटा-सा उदाहरण देखिए ·········

"ना सोचन के सोच में; सोचत है दिन रैन।
ना कहना कछु भी जहां, फूट पड़त हैं बैन॥
दर्शन बिन भी चैन नहिं, दर्शन में बेचैन।
दर्शन और अदर्शन में, विकल होत हैं नैन॥

स्वामी जी के अंतरंग का परिचय 'राम तरंग माला' से ही होता है। स्वामी जी के सत्संग का लाभ उठाना प्रत्येक व्यक्ति के पूर्व संस्कारों पर ही निर्भर है। योग्य साधक स्वामी जी के सत्संग से क्षण मात्र में अधिकारी बन जाते हैं।

**दिव्य सन्देश**

स्वामी जी सच्चिदानन्द का वास्तविक अर्थ राष्ट्र को 'निर्भयता, संघटन, और आनन्दमय जीवन में ही बताते हैं। स्वामी जी के कथनानुसार आत्मज्ञान के लिए घर-बार छोड़कर कहीं भी जाने की जरूरत नहीं है। वे कहते हैं संसार एक कल्प-वृक्ष है। उसकी उत्पत्ति कल्पना पर तथा मन के कार्य पर है। इसे न कोई छोड़ सकता है न यह कभी छूटा है। जब तक विकास का कार्य चल रहा है तब तक यह रहेगा ही। संकल्प विकल्पों की विपुलता से चित्त की चंचलता बढ़कर इच्छा-शक्ति दुर्बल हो जाती है। वही शक्ति परिमित तथा सात्विक संकल्पों से जब सीमित की जाती है तब तीव्र केन्द्रीकरण होकर संकल्प-सिद्धि दृढ़ तथा शीघ्र होती है। इसलिए जो साधक सदा सात्विक संकल्प करेगा अर्थात् अविनाशी सुख की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करेगा उसको सुख ही प्राप्त होगा, अन्यथा इस कल्प-वृक्ष के नीचे बैठकर वृथा कल्पना करने से दुख के अतिरिक्त उसके हाथ और कुछ भी नहीं आएगा······दैव भी एक प्रकार का पुरुषार्थ है। पुरुषार्थ के लिए विचारपूर्ण कर्म आवश्यक है। वृथा कर्म से असफलता ही होती है······संकल्प के आधार पर ही संसार-वृक्ष खड़ा है। संकल्प, आसक्ति और स्वार्थ हटते ही यह वृक्ष अर्राकर गिर पड़ता है। स्वाभाविक इंद्रिय-व्यापार यदि प्रभु-प्रेरणानुसार होने लगे यो यह संसार ही परमार्थ बन जाता है। अतएव अपने संस्कारानुसार कृष्णार्पण बुद्धि से समाज में रहकर कर्म किए जाएं-'योगः कर्मसु-

कौशलम्'–तो संसार ही परमार्थ तथा प्रवृत्ति ही निवृत्ति बन जायेगी और ईश्वर प्राप्ति के लिए परिवार त्याग कर कहीं भी जाने की आवश्यकता नहीं रहती ।

**वर्तमान निवास-स्थान 'राम-कुञ्ज'**

गत चार वर्षों से स्वामी जी हरिद्वार में निवास कर रहे हैं। इसके पहले काश्मीर से लौटने के बाद स्वामी जी ने लुधियाने में 'तुलसी वाटिका' की स्थापना की थी और वे अपना अधिकतर समय वहीं बिताया करते थे। एकांतवासी होते हुए भी भक्तों की भीड़ हमेशा उनके पास बनी रहती थी जिनमें सरकारी अफसर, विदेशी, न्यायाधीश, प्राध्यापक तथा जनसाधारण के साथ-साथ अनेक साधु-वैरागी भी समाविष्ट थे। सहसा एक दिन स्वामी जी हरिद्वार आ पहुँचे। सप्तसरोवर के पास पुनीत जान्हवी सप्त धाराओं में मुखरित हो उठी थीं। उस चिरन्तन संगीत में स्वामी जी को ऊंकार की ही ध्वनि सुनाई दी। उस अखंड ध्वनि को सुनते ही वे तल्लीन हो गए। उस अद्वितीय आनन्द में राम रममाण हो उठा। लगा कि वे वहीं कुटिया डालकर बस जाएं। विचार आया और काम कर गया। स्वामी जी के साथ लुधियाने के एक धनिक भक्त भी थे। स्वामी जी को आत्मविभोर देखकर और स्वामी जी की रुचि उस स्थान में देखकर उन्होंने वह जमीन खरीदकर स्वामी जी को दे दी और प्रभु की कृपा से शीघ्र ही 'राम-कुंज' बन भी गया। साधना के लिए सर्वथा उपयुक्त यह पुनीत स्थान हरिद्वार से लगभग तीन मील दूर सप्तऋषि आश्रम के पास, मोतीचूर बांध लांघकर गंगा जी के ठीक किनारे पर है। जन-रव से दूर पहाड़ों के बीच और गंगा के पवित्र सान्निध्य में 'राम-कुंज' सतत प्रणव की अखंड ध्वनि का आस्वादन कर रहा है। आश्रम के पावित्र्य और वहाँ के नैसर्गिक सौन्दर्य से दर्शक क्षण-भर में ही आत्मविभोर हो उठता है, उसे और किसी भी बात की सुधि नहीं रहती। सामने गंगा जी बहती हैं और ऊपर आकाश में जान्हवी के ठीक समानान्तर स्वमंदाकिनी के दर्शन होते हैं। और इस दुर्लभ आनन्द का रसास्वादन एकांतवासी स्वामी जी दिन-रात करते रहते हैं। समस्त जड़ और चेतन से एकरूप होने के कारण ही स्वामी जी चौबीस घण्टे आनन्द में रममाण हैं और इसीलिए उनका कोई भी कार्य-कलाप उस आनन्दानुभूति में बाधा

उपस्थित नहीं कर सकता। दीर्घकाल तक समाधि में या पूजा-पाठ के लिए उन्हें न बैठा देखकर भक्तगण आश्चर्य से प्रायः सोचते रहते हैं कि स्वामी जी आखिर करते क्या हैं ? परन्तु यदि आप उनसे यह प्रश्न पूछें तो उत्तर में आपको केवल एक मुस्कान ही मिलेगी—आनन्द भरी मुस्कान और आप सन्तुष्ट हो जाएंगे।

प्रस्तुत ग्रन्थ में परमपूज्य श्री स्वामी जी द्वारा प्रतिपादित मूलभूत सिद्धान्तों को सूत्र रूप में प्रस्तुत करने के साथ-साथ उनके जीवन की उन घटनाओं को समाविष्ट किया गया है जो सहज प्राप्त हो सकी हैं, अतः वे अपने में पूर्ण नहीं हैं, बल्कि ऐसी अनेक महत्व-पूर्ण घटनाएं होंगी जो समय और व्यक्ति की सीमाओं में सुप्त हो चुकी हैं। अतः यह ग्रन्थ श्री स्वामी जी के जीवन की केवल कुछ ही झांकियाँ प्रस्तुत कर सका है; उनका समग्र जीवन नहीं।

इस ग्रन्थ को लिखने की प्रेरणा लेखक को ध्यानावस्था में लगभग दो वर्ष पूर्व हुई थी, परन्तु उस अनुभव को उसने अपने ही अचेतन मन की धारणा समझकर छोड़ दिया था। साथ ही वह यह भी जानता था कि ऐसा कोई भी प्रयास कर सकना सर्वथा उसके सामर्थ्य के बाहर की बात है। पर जो होना होता है उसे कौन रोक सकता है ? ३१ मार्च १९६५ को जब लेखक स्टेट बैंक की नई दिल्ली शाखा में चेक भुनाने के लिए बैठा हुआ था तब अचानक काव्य-स्फूर्ति हुई और उसने वहाँ होने वाले शोरोगुल के बावजूद भी इस ग्रन्थ के प्रथम सात छंद लिख डाले। दूसरे दिन दफ्तर के कार्य के लिए कोर्ट जाना पड़ा, पर जिस वकील से मिलना था वह किसी केस में व्यस्त था। इस दौरान अगले आठ छंद और लिखे गए। तब से ग्रन्थ समाप्ति तक उस दैवी प्रेरणा का स्रोत बराबर जारी रहा और इसीलिए लेखक का अपना जीवन अत्यन्त व्यस्त और परेशानियों से भरपूर होते हुए भी यह पुनीत कार्य प्रभु इच्छा से पूरा हो सका।

लेखक की अपनी सीमाओं एवं दुर्बलताओं के कारण इस ग्रन्थ में अवश्य ही त्रुटियाँ रह गई होंगी, जिनके लिए लेखक नतमस्तक होकर क्षमा का प्रार्थी है।

—लेखक

हृषीकेश के श्यामल पथ पर हरिद्वार से थोड़ी दूर,
उत्तर से पूरब को कुछ हट फैला है गंगा का कूल,
सप्तधार में गंगा बहती यहां श्याम, शीतल; अविराम,
इसीलिए यह स्थल कहलाता 'सप्त सरोवर' पावन धाम।

एक ओर शोभित आश्रम हैं और दूसरी ओर अरण्य,
दोनों में होकर बहती है देव-लोक की करुणा, धन्य,
चारों ओर क्षितिज़ पर फैले हिम-गिरि के उत्तुंग पहाड़,
मानों वे इस तपोभूमि की खड़े हुए हैं करने आड़।

प्रकट रहस्य सा गोचर होता वेष्ठित शिखरों से यह स्थान,
अकस्मात साकार उठी हो जैसे नभ की मधु मुसकान,
ऊपर उत्तर में शोभित है हिम-आच्छादित वद्रि विशाल,
नीचे चण्डी मनसा के हैं खड़े शिखर दो ताने भाल।

मोतीचूर बांध के नीचे गंगा के तट पर विश्रांत,
तरूण तपस्वी सा बैठा है 'रामकुंज' चिन्तन में शान्त,
सम्मुख गंगा प्रणव नाद में गाती है प्राणों का गीत,
उसके ऊपर स्वर्गंगा के झिलमिल करते अगणित दीप।

नीचे गंगा ऊपर गंगा दो धाराओं का संयोग,
जहां, रामकुटि बन बैठी है मानो नभ-धरती का योग,
इस आश्रम की जितनी देखो महिमा उतनी ही अभिराम,
प्रणव-मूर्त्त से जहां विचरते उद्धारक मेरे 'श्रीराम'।

नित समाधि में रहते हैं जो खाते पीते करते बात,
देख उन्हें मन सहज सोचता कैसा यह योगी अभिजात ?
पास नहीं है शिष्य वर्ग जो अहं-भाव से मंडराए,
नहीं गेरुए कपड़े तन पर जिनमें साधू जँच जाए।

कोलाहल से दूर अकेला अपने ही चिंतन में लीन,
कैसे यह योगी रहता है त्याग जगत को संग-विहीन,
साथी केवल पौधे कुटि के और सामनें वन्य विराम,
गंगा के कलकल निनाद में कैसे रमते उसके राम।

इस एकाकी आश्रम में हैं जीवन के सारे आराम,
जिन्हें भक्त-ज र संचित करते आते वे उनके ही काम,

किन्तु भक्त जो पा बैठे हैं उसकी करुणा का वरदान,
भाग्यवान वे ! उन्हें हो चुकी थोड़ी सी उसकी पहचान।

दलदल में विकसित शंतदल सा यह योगी है बन्धन-मुक्त,
निजानन्द की स्वानुभूति में खोया सा निशि-दिन अनुरक्त,
रहन-सहन से लगता है वह साधारण सा कोई व्यक्ति,
अहं-भाव अभिमान छोड़कर मूर्तिमान हो मानो मुक्ति।

कभी किसी ने उस श्रीमुख से नहीं सुना उसका गुणगान,
किन्तु सर्वदा पाई उसमें लीन नम्रता की पहचान,
जिला अकोला तेल्हारा में उदित हुआ यह दिव्य प्रसून,
अपनी सात्विक मधुर गंध से सुरभित करता जग, हर जून।

संवत् उन्निस सौ सत्तर को गंगादशमी प्रातः काल,
एक भद्र ब्राह्मण दम्पति ने होनहार पाया यह लाल,
शैशव से ही इस बालक को उजियाले से था अति प्यार,
अंधकार का बेचैनी से सदा किया उसने प्रतिकार।

लोग चकित थे, कभी न रोता अद्भुत शिशु यह कैसी वात,
अपना ही अंगुष्ठ चूसता आनन्दित रहता दिन-रात,
हृष्ट-पुष्ट निर्भीक साहसी प्रखर-बुद्धि शिशु हुआ किशोर,
प्रथम स्थान कक्षा में पाता किन्तु गणित में था कमजोर,

देने को जो हुआ अवतरित बिन माँगे बदले में दान,
वह क्या जाने कुटिल जगत की लेन देन की विधि अनुमान,
पिता भक्त थे नित्य शाम को करते थे हरि का गुणगान,
एकत्रित सब पुरजन होकर पाते थे सुख शान्ति-विधान।

वहीं राम तन्मय हो सुनता प्रभु-लीलाओं का महिमान,
हृदय-लोक में पाता अपने संचित वह सब पूर्व-विधान,
मायातीत राम को छलने जब न गणित ने मानी हार,
चित्र-कला में इंटर उसने किया गणित से पाने पार।

अभी राम शिशु था जब माता उसे ले गई पंढ़रपूर,
श्रीचरणों पर उसे डालने देख समय को अति अनुकूल,
वहाँ रहे वे एक हवेली में थी जिसकी मंजिल तीन,
स्वजन त्रितीय मंजिल पर रहते जहाँ हुए वे भी आसीन।

होनहार था एक रात में राम जा गिरा नीचे हाय,
सुना धमाका, घरवाले सब घबराए दौड़े असहाय,

अंधियारे में राम पड़ा था भींग पसीने से चुपचाप,
रक्त-सिक्त मां शिशु को समझी उठे गात सव उसके कांप।
किन्तु उजाले में जब देखा दिखी न तन पर कोई चोट,
सहलाकर स्तन-पान कराने लिया राम को आंचल ओट,
पा पियूष मातृत्व प्रेम का सजग हो उठा शिशु नादान,
दुःख भरे चेहरों पर झलकी समाधान की मधु मुसकान।
एक बार शेगांव राज्य में गया राम माता के संग,
जहां गजानन महाराज थे रहते पहुँचे साधु निसंग,
विना किसी से वात किए वे रहते थे अपने में मस्त,
और अजव उनके वर्तन से लोग हो गए थे अभ्यस्त।
फिर भी भक्त लोग जाते थे करने चरणों को प्रणिपात,
साधु औलिया निजानन्द में खोया रहता था दिन-रात,
एक दिवस माता भी पहुँची उठा राम को अपनी गोद,
देख निकट अपने शिशु अभिनव हुआ साधु के मन में मोद।
अकस्मात उसके श्रीमुख से निकल पड़ी अद्भुत पुचकार,
किन्तु दृष्टि थी और कहीं ही गौण रहा उसका अभिप्राय,
किन्तु व्यक्ति जो पास खड़ा था समझ गया यति का अभिप्रेत,
किया साधु सम्मुख जाने का उसने माता को संकेत।
देख पड़ा चरणों पर शिशु को सहसा विहंस उठा अवधूत,
लगा फेरने शिशु मस्तक पर वरद् हस्त निज, हो अभिभूत,
चमत्कार ऐसा ही अद्भुत हुआ एक थोड़े दिन बाद,
संरक्षणं बालक का करने हुए प्रकट थे जब श्रीपाद।
यह घटना है तब की जब था हुआ राम-मुण्डन-संस्कार,
मुंडित मस्तक पर आगे कुछ छोड़ दिया था कुंतल-भार,
बना अनमना सा तब से ही अपने घर से थोड़ी दूर,
राम एक दिन खड़ा हुआ था घिरा सखाओं से भरपूर।
मुण्डित मस्तक के चिन्तन में हो उठा राम अत्यन्त उदास.
और शीश उसका सहलाकर सखा लगे करने उपहास,
तभी बन्धु ने लाकर माचिस सुलगा दिए राम के बाल.
देख धधकती सिर पर ज्वाला, सखा गए सबके सब भाग।
विकल राम था खड़ा अकेला आसपास थे कहीं न लोग,
आया उसी समय सन्यासी एक, राम की दशा विलोक,

आगे बढ़कर, झटपट उसने ज्वाला पर रखा निज हाथ,
बुझ गई आग, अदृश्य हुआ वह करुणामय प्रभु जग का नाथ।

कहा राम ने घर आते ही वह सारा अद्भुत वृत्तांत,
देख चकित सब लोग हो गए स्वस्थ राम का मस्तक-प्रांत,
अभी राम की आयु अल्प थी पिता हुए जब निर्व्यवसाय,
रामचंद्र के ज्येष्ठ बन्धु पर पड़ा भार घर का निरुपाय।

निर्धनता से त्रस्त पिता को देखा पुत्रों ने असहाय,
करने लगे नौकरी दोनों सोच त्राण का यही उपाय,
किन्तु आपदा कभी न आती एकाकी करने संघात,
अपितु साथ में लाती अपने अगणित दुःखों के उत्पात।

इधर विकल थे निर्धनता से दीन, दुखित घर के सब लोग,
और उधर अभिशाप बना सा घर में फैल उठा था रोग,
लौट नौकरी से रुग्णों की नित सेवा करता था राम,
शेष समय में स्तोत्र पाठ कर लेता रहता था हरि नाम।

इसी बीच था उसके पग में हुआ कील से भारी घाव,
किन्तु जरा भी घटा न उससे उसका सेवा का प्रण-भाव,
एक दिवस होकर अति विह्वल पूछा बूवा ने 'प्रिय राम !
कितना दुख तू उठा रहा है, करने में हम सब का काम।

बोल उठा तत्काल राम तब 'बनना बड़ा नहीं आसान,
ब्रह्म प्राप्ति के लिए लगाने पड़ते हैं बाजी पर प्राण !'
महामंत्र सा सिद्ध हो उठा महा वाक्य यह निःसन्देह,
अपनी त्याग तपस्या से ही ब्रह्मरूप वह बना सदेह।

धन्य ग्राम उमरी है जिसमें किया राम ने जा आवास,
जहां जगी एकान्तवास में उत्कट प्रभु-दर्शन की प्यास,
मध्य रात्रि में नित्य जागकर करके स्नान नियम से रोज,
प्रभु का दर्शन पाने के हित राम पढ़ा करता था स्तोत्र।

प्रभु दर्शन के निजऽध्यास में रहने लगा भ्रमित नित राम,
प्रायः वह उठती नयनों से अविरल अश्रु-धार अविराम,
प्रभु चिंतन में मग्न राम ने तय कर रक्खी थी यह बात,
प्रभु-दर्शन पाने के तप में जुटा रहेगा यह दिन रात।

'ले जाएंगे उसको सद्गुरु जहां, वहीं जाएगा राम,
प्राप्त जगत का अनुभव करके होगा कर्मनिष्ठ निष्काम',

यह पद गाते ही उसका था खो जाता सारा अवसान,
उत्कट तन्मयता में था मिट जाता बाह्य जगत का ज्ञान।

किन्तु नौकरी छोटी सी यह करके भी जब चला न काम,
कानपूर जाने को निकला अच्छा-सा पद पाने राम,
कानपूर मिल के मैनेजर सिमसन का था भद्र स्वभाव,
शीघ्र राम की चित्त-वृत्ति का उसपर गहरा पड़ा प्रभाव।

सब लोगों में एक राम का ही रहता था उसको ध्यान,
सदा प्रशंसा मुक्त कंठ से करता था उसका सम्मान,
लौकिक कर्मों का प्रभु चिंतन पर न कभी भी पड़ा प्रभाव,
राम कर्मरत रहकर भी था बना रहा प्रभु का अनुभाव।

गया अकोला सिमसन पाने मैनेजर न्यू मिल का स्थान,
बुला रामको भेजा उसने तत्परता से प्रिय जन जान,
दिया स्थान साईजिंग मास्टर का आनन्दित होकर तत्काल,
रुपये डेढ़ सौ वेतन देकर, मन ही मन वह हुआ निहाल।

सब सहयोगी आनन्दित थे देख राम का मृदु व्यवहार,
और किया करते थे उससे अत्याधिक प्राणों से प्यार,
किन्तु दैव भी देख न पाता आनन्दित मुख की मुसकान,
सिमसन के स्वदेश जाते ही हुआ बड़ा मिल का नुकसान।

की हड़ताल सभी लोगों ने, दुःशासन से हो मजबूर,
जाना पड़ा राम को होकर विवश बम्बई; घर से दूर,
मिली राम को वहाँ नौकरी किन्तु हो गया वह बीमार,
कठिन हुई एकान्त-साधना उदित हुए जलवायु-विकार।

अतः नौकरी छोड़ अकोला जब अपने घर आया राम,
बहुत शीघ्र ही रोग दूर हो, हुआ उसे पूरा आराम,
रोग हुआ निःशेष किन्तु अब बदली उसकी वृत्ति महान,
त्याग वस्त्र सब अनायास ही करने लगा लुंगि परिधान।

दत्तात्रय के सम्मुख निशि में बैठ जपा करता था नाम,
और छाछ केवल पी करके उदर पूर्ति करता था राम,
अष्टभाव अब हुए प्रस्फुटित रुंधने लगा कण्ठ अभिराम,
अश्रु-धार नयनों से बहती ध्यान मग्न हो जाता राम।

इसी समय दिल्ली में खुलने वाली मिल का पा संवाद,
ज्येष्ठ बन्धु ने कहा राम से दिल्ली को करने प्रस्थान,

दिल्ली आकर पता लगा थी बात नई मिल की निर्मूल,
किन्तु ग्वालियर में खुलने का समाचार पाकर अनुकूल।
तत्परता से गया ग्वालियर सोच वहाँ पाएगा काम,
होनहार था किन्तु वहाँ भी रहा काम बिन पाए राम,
अतिथि बना श्री अग्निहोत्री का रहा ग्वालियर में था राम,
प्रभु चिंतन के साथ-साथ ही खोजा करता था वह काम।
चर्नी रोड़ निकट एक दिन जा रहा राम था प्रातः काल,
और सामने से सन्यासी एक आ रहा था वेहाल,
लगा राम का धक्का उसको बिखर गया उसका सामान,
झुका राम तत्काल बटोरा उसे शीघ्र दुख मन में मान।
कहा राम से हँसकर यति ने लेकर निज सामान सम्भाल,
'छह महीने में निश्चित समझो होगा यही तुम्हारा हाल',
राम चकित हो देख रहा था जाते साधू को भरपूर,
हुआ अदृश्य वह भीड़ जहाँ लोगों की थी थोड़ी दूर।
सन् उन्निस सौ छब्बिस की है यह घटना, जब मिला न काम,
लौट अकोला घर जाने का निश्चय तव कर बैठा राम,
रुपये नहीं थे किन्तु पास में करने भाड़े का भुगतान,
और मांगने से होता था आहत उसका प्रिय सम्मान।
जिसने अब तक दे डाला था अपना सब धन घर के काज,
वही किराया मंगवाने को बने अकिंचन क्योंकर आज,
नहीं किया था जिसने संग्रह धन का अब तक अपने साथ,
विवश आज औरों के सम्मुख पड़ा उसे फैलाना हाथ।
इस प्रसंग से हुआ पराजित स्वाभिमान उसका नितान्त,
हाहाकार मचा अन्तर में विकल राम हो उठा अशान्त,
चलता रहा किन्तु प्रभु-चिन्तन किया दुखित मन ने निर्धार,
तीन दिवस में गुरुचरित्र का पाठ करेगा, बिन आहार।
रहा तीन दिन लगातार था निराहार जल पीकर राम,
किन्तु चित्त की शांत वृत्ति पर हुआ नहीं कुछ भी परिणाम,
बीत गए जल पर ही दो दिन, नहीं घटा मन का आनन्द,
हुआ तीसरा भी व्रत पूरा और पाठ सुख से सम्पन्न।
विप्र-भोज के साथ पारना करूँ हृदय में था अरमान,
मन मसोस कर किन्तु रहा चुप निर्धनता अपनी पहचान।

सम्मुख औरों के फैलाना हाथ, न था उसका सिद्धांत,
निकल जयाजी पार्क गया वह व्याकुल मन को करने शान्त,
सान्ध्य समय था, लगा फैलने अन्धकार था चारों ओर,
एक ओर एकान्त देखकर राम ध्यान में हुआ विभोर।

नीरवता रजनी की छायी होगी आठ बजे की बात,
दिव्य पुरुष आ हुआ उपस्थित एक राम-सम्मुख, अज्ञात,
जटा जूट श्रीमुख से उसके उर्जस्वित था तेज अपार,
देख राम को सम्मुख अपने ध्यान मग्न, वह उठा पुकार।

'भूखा हूँ भोजन दो मुझको' सुनी राम ने जब आवाज़,
टूटा ध्यान, सामने देखा खड़ा साधु था उसके पास,
निराहार था राम स्वयं पर क्षुधाक्रांत उस यति को देख,
तड़प उठा उसका मन कोमल उसने देखी अपनी जेब।

कोट नया परिधान किया था था, न जेब में पैसा पास,
संकोची, सहृदय राम का हुआ चित्त अत्यन्त उदास,
व्याकुल होकर कहा राम ने है इच्छा कुछ करूँ प्रदान,
किन्तु दुखित हूँ, रिक्त जेब है क्षमा करो मुझको मेहमान।

किन्तु और कुछ यदि तुम चाहो, दे सकता है राम तुरन्त,
तभी राम को लगा अचानक हो सकता यह यति भगवन्त,
अपने भक्तों को अजमाने यों ही आते हैं भगवान,
हुआ पाठ भी पूर्ण आज ही स्मरण हुआ उसको अनजान।

कहा साधु ने 'झूठ बात है नहीं मुझे होता विश्वास,
दे डालो यह नया कोट ही अगर नहीं है पैसा पास',
वचन साधु के सुने राम ने, उमड़ा उर में पारावार,
श्रद्धामय निष्काम भाव से दे डाला वह कोट उतार।

पाकर कोट साधु के मुख पर झलकी मर्म भरी मुसकान,
'सोने चाँदी में खेलो तुम' अदृश्य हुआ वह दे वरदान,
अर्थ ध्वनित जिससे यह होता करो चन्द्र सूरज पर राज,
अथवा इंगला पिंगला पर जय पाकर हो जाओ निष्काज।

मन्त्र-मुग्ध सा राम खड़ा था उमड़ रहा था दिव्यानंद,
विनय भाव से झुकी दृष्टि भी था मानस उसका निर्द्वन्द्व,
दिव्य साधु था यही राम को दिखा गया जो उसकी राह,
और बाद में भी गुरुपद का सदा किया जिसने निर्वाह।

कई प्रसंगों पर आगे भी हुआ प्रकट सद्गुरु अज्ञात,
दर्शन दिया राम को उसने किया मार्ग–दर्शन अभिजात।

सदा राम ने पाया उससे ही जीवन में निर्देश,
अपनाया गुरुपद पर उसने कभी न कोई व्यक्ति विशेष,
उठा पलक जब उसने देखा साधु हुआ था दृष्टि-विलीन,
राम अकेला खड़ा हुआ था विस्मित, अविचल कोट-विहीन।

सहसा पैर तले से पृथ्वी खिसकी हो जैसे अनजान,
हुई राम की स्थिति वैसी ही देख साधु को अन्तर्धान,
उतर चुकी थी नभ से रजनी निर्जन था सारा उद्यान,
एक राम के सिवा नहीं था कोई और व्यक्ति उस स्थान।

पूछताछ साधू की करने गया राम बाहर तत्काल,
जहां दुकानें थीं कुछ लेकिन बना हुआ था पथ सुनसान,
नहीं किसी ने देखा जब यति कौन बताता उसकी बात,
प्रकट हुआ था राम हेतु ही जब प्रभु बन साधू अज्ञात।

मर्म जान यह अन्तःस्तल में बही लोचनों से जल धार,
रोम रोम भर उठा पुलक से रहा न दुख का पारावार,
अन्तर्मुख हो तभी राम ने कर डाला मन में निर्धार,
इसी समय वह निकल पड़ेगा काट जगत के बन्धनवार।

आधी रात गए घर जाकर लिख रक्खा उसने संदेश,
'राम छोड़ सब निकल पड़ा है पाने जीवन का उद्देश,
आप अगर चाहें तो ले लें, जो कुछ है मेरा सामान,
अथवा घर वालों को दे दें यदि वे आ पहुँचें इस स्थान'।

चला राम विक्षिप्त बना सा धोती एक किये परिधान,
आधी कटि पर लिपट रही थी और शेष तन पर द्युतिमान,
क्षुधाक्रान्त था फिर भी पहुँचा स्टेशन पर वह तत्काल,
पटरी पटरी चला मुरैना पहुँचा पैदल सायंकाल।

चैत मास था निखर उठा था चारों ओर मधुर मधुमास,
महाराष्ट्र में गौरी-पूजा का छाया था उल्लास,
उसी समय स्टेशन मास्टर था लौट रहा घर सांयकाल,
क्षुधा-म्लान उस देख युवक को लगा पूछने उसका हाल।

उसे गया ले अपने घर पर कई दिनों से भूखा जान,
स्नेह मधुर कृतकृत्य भाव से दिया उसे उसने जलपान,

हुआ रात को गौरी पूजन का जब आयोजन सम्पन्न,
किया राम ने ग्रहण साथ में सबके उस दिन पावन अन्न।
राम मार्कण्डेय शिवालय में ठहरा करने विश्राम,
किया राम ने कीर्तन श्रोता हुए तृप्त सुनकर हरिनाम,
चकित ब्रह्मचारी मंदिर का हुआ राम का जीवन देख,
पूछ उठा वह कौतूहल से राम-भ्रमण का सद्उद्देश।
सरल स्पष्ट शब्दों में समझा दिया राम ने अपना ध्येय,
उसी समय स्टेशन मास्टर भी अकस्मात आया स्वयंमेव,
वहीं राम से रहने का कर देखा दोनों ने अनुरोध,
हरिद्वार पैदल जाने से किन्तु उसे वे सके न रोक।

आखिर स्टेशन मास्टर ने देख राम का दृढ़ निर्धार,
कहा रेल से मथुरा तक ही जाना वह कर ले स्वीकार,
कर प्रबन्ध उसके जाने का हुआ उसे मन में संतोष,
बिन मांगे रख दिए साथ में कुछ पैसे पथ का खर्चा सोच।
अपने एक मित्र को उसने मथुरा भेज दिया संदेश,
मिले उसे वह, लौटाने का करे यत्न पूरा अवशेष,
मथुरा में वह व्यक्ति राम से मिला, किया काफी अनुरोध,
किन्तु राम का दृढ़ निश्चय है हुआ उसे भी यही प्रबोध।

मथुरा में भगवत् दर्शन हित रह गया राम दिन दो चार,
चलकर मथुरा से पहुँचा वह देहली होकर हरिद्वार,
हरिद्वार से आगे चलकर गया राम कनखल की ओर,
और वहाँ से जा पहुँचा वह चामुण्डा जंगल घनघोर।
पथिक साधु पण्डों ने मांगा दे डाला उसने अवशेष,
बिना किए अपनी कुछ चिंता सहज पास का रुपया एक,
पास नहीं थे पैसे करता कैसे नील-धार पुल पार,
लेकर शेष एक पेंसिल ही मान गया लो चौकीदार।

प्रभु की इच्छा, बिना चुकाए ही कर, पहुँचा वह पुल पार,
आनन्दित था राम हृदय में देख जान्हवी का श्रृंगार,
सोमवार था, जा गंगा में किया राम ने जी भर स्नान,
बना बालु का लिंग पूजने बैठ गया, कुछ रहा न भान।
नामस्मरण में विस्मृत था वह हुआ तीन दिन का उपवास,
पूरा होते ही जप उसने देखा खड़ा एक यति पास,

कहा साधु ने विह्वल होकर 'उठा रहा क्यों इतना कष्ट,
उठ, जा, सोने चाँदी में कर क्रीड़ा मैं कहता हूँ स्पष्ट।

हो विजयी तू सूर्य चन्द्र पर वश हो तेरे प्राण अपान,
ऋद्धि-सिद्धि तू प्राप्त करेगा बता, हुआ यति अन्तर्धान,
तत्पश्चात कूदकर जल में पहुँच गया राम उस पार,
लगा सुखाने निज बालों को तभी सुने उसने उद्‌गार।

'बद्रिनाथ का पण्डा हूँ मैं रामचन्द्र है मेरा नाम,
बड़ी देर से खोज रहा हूँ मैं व्याकुल तुमको ही राम,
चलो साथ मेरे तुम कर लो भोजन कर रखा तैयार',
देखा निकट एक व्यक्ति था करता अनुनय बारंबार।

बहुत कहा पर सुना न उसने खड़ा रहा वह जोड़े हाथ,
व्यर्थ जान आगे कुछ कहना राम चल पड़ा उसके साथ,
भोजन करके लगा राम को माने वह उसका आभार
किन्तु वहाँ पर व्यक्ति कहाँ था जो करता उसको स्वीकार।

हुआ राम को भोजन देकर वह पण्डा था अन्तर्धान,
खोज बहुत की पर न राम ने पाया उसका कहीं निशान,
सोच-सोच यह अद्‌भुत घटना घिर आया मन में अवसाद
चलकर गंगाजी के तट-तट पहुँचा राम फरीदाबाद।

चरण कमल क्षत-क्षार बने थे चलते-चलते पैदल राह,
देह थकी थी, पेट क्षुधा से पल-पल था उठ रहा कराह,
किन्तु रामका ध्यान कहाँ थाअपनी व्याकुल स्थिति की ओर,
ईश प्राप्ति की व्याकुलता में बना राम था आत्म विभोर।

देखी उसने दूर गाँव से टूटी-फूटी सी कुटि एक,
जीर्ण शिवालय पास खड़ा था नीरवता करती अभिषेक,
देख शान्त एकान्त स्थान वह पहुँच गया मंदिर में राम,
बैठा देवालय में जाकर कातर, भजता हरि का नाम।

किया राम ने वहाँ बैठकर चालीस दिवस का उपवास,
स्त्रोत्र - पाठ में जुटा रहा वह देख भाग्य का वह परिहास,
अन्तिम दिन आ हुई उपस्थित भोजन लेकर वृद्धा एक,
करा प्रेम से भोजन उसको सुखी हुई वह माता नेक।

लगने लगी भीड़ लोगों की रहा न पहला सा एकान्त,
छोड़ शिवालय जा पहुँचा वह गढ़-मुक्तेश्वर निर्जन स्थान,

वहाँ निविड एकान्तवास में करता रहा साधना राम,
प्रभु चिंतन में लीन उसे था रहा न अपना कुछ भी मान।
एक दिवस आ हुआ उपस्थित मद्रासी सन्यासी एक,
फटे फुटे कपड़े थे उसके भस्म निमज्जित सारी देह,
अतिथि राम को चकित भाव से रहा देखता थोड़ी देर,
क्षुधाक्रांत था राम सहज पर झलक रहा था मुख पर तेज।
कहा राम से 'हलवाई ने भोजन कर रक्खा तैयार,
चलो साथ मेरे तुम चलकर करो शीघ्र उसको स्वीकार',
साथ राम को लेकर पहुँचा वह हलवाई की दूकान,
खिला राम को हलवाई जब लगा माँगने अपने दाम।
बोला यति 'उसमें से ले लो जो मेरा धन तेरे पास',
मौन रहा ध्वनितार्थ जानकर उसका हलवाई चुपचाप,
चाह रहा था गायत्री का पुरश्चरण करना उस स्थान,
आने लगे भक्त बहुतेरे रहा न आवश्यक सुनसान।

निकल वहाँ से पकड़ी उसने दक्षिण-बाबा-कुटि की राह,
शान्त विपुल एकान्त जहाँ था सुगम साधना का निर्वाह,
वहाँ समर्थ-संजीवनी का करने लगा अध्ययन राम,
भजता रहा एक तारे पर रघुपति राघव राजाराम।

इसी समय माण्डव्याश्रम से आए स्वामी योगानन्द,
देख राम की प्रभुतन्मयता हुआ उन्हें अतिशय आनन्द,
दृष्टि अनुभवी थी योगी की हुआ उन्हें कुछ अन्तर्बोध,
किया राम से आश्रम चलने का स्वामी जी ने अनुरोध।

आश्रम था माण्डव्य ऋषी का अनुपशहर से पंद्रह मील,
निर्माता जिसके थे योगी स्वामी कृष्णानन्द सुशील,
योगानन्द उन्हीं के चेले थे उत्तर में बहुत प्रसिद्ध,
अष्टांग-योग साधन तप में निश्चित वे योगी थे सिद्ध।

शिष्य-वर्ग था व्यापक उनका आया करते लोग अनेक,
राम जंचा उन सब में लेकिन चतुर तरुण तेजस्वी एक,
देख राम का आज्ञा पालन और नम्र सबसे व्यवहार,
लगा उन्हें वह उनके पीछे वहन करे आश्रम का भार।
तीव्र तपस्या साधन बल था संचित थे पहले संस्कार,
अष्टांग साधना में तब तक हुआ राम का था अधिकार,

चलता रहता था संकीर्तन इक 'तारे पर प्रणवोच्चार,
आश्रमवासी सारे साधक करते थे उससे अति प्यार।
किन्तु राम के संकीर्तन से हुआ साधना में अवरोध,
और साधकों की, आश्रम के हुआ उसे जब इसका बोध,
उसी समय से तय कर डाला, दुखी हृदय में हो नित्तान्त
रोज शाम को जाएगा वह गंगा तट पर विश्रांत।
वहाँ धारणा लहरों पर कर अथवा शशि का देख प्रकाश,
घण्टों ध्यान किया करता था राम बिना देखे अवकाश,
कभी वहीं सो जाता था वह सिकता-चादर पर एकान्त,
वन्य-जन्तु आ चाटा करते अवयव उसके हो निभ्रांत।
स्निग्ध-स्पर्ष से उनके सहसा जब वह उठ जाता था जाग,
प्रवण-गान गा उठती रसना, जाते थे पशु सारे भाग,
एक दिवस आश्रम में आए सहज साधु बंगाली एक,
कहा राम से 'करो अध्ययन' वृत्ति राम की अच्छी देख।
नहीं राम को भाता था उस आश्रम का राजस परिवेश,
आनन्दित हो ग्रहण किया उस साधू का उसने उपदेश,
काशी जाने का निज निश्चय किया व्यक्त जब, योगानन्द,
हुए न सहमत, यत्किंचित भी हुआ नहीं उनको आनन्द।
किन्तु अटल होते हैं निश्चय सभी राम के मन में जान,
मान गए वे, दिया राम को पत्र एक सज्जन के नाम,
सज्जन रामशरण सहाय थे पत्र दिया था जिनके नाम,
श्रद्धावान व्यक्ति थे, घर पर उनके ही पहुँचा राम।
हुए प्रसन्न राम से मिलकर किया बड़ा स्वागत सत्कार,
दिया पाठशाला में कमरा कोलाहल से दूर विचार,
वस्ती बीच पाठशाला थी वहाँ न था बिल्कुल एकान्त,
लगा राम को दो ही दिन में करे वहाँ से वह प्रस्थान।
सुबह शाम था नेम राम का जाता था दर्शन के काज,
संत-साधुओं के, वह पाने आत्मज्ञान का दुर्लभ राज,
किन्तु जहाँ भी गया ढंग था मद मत्सर का पारावार,
हुआ राम उद्विग्न हृदय में देख साधुओं का व्यवहार।
दीर्घ ध्यान जपतप से अपने ही कर लेगा वह मन शुद्ध,
सोचा उसने, कठिन साधना से हो जाएगा वह बुद्ध,

आज नहीं तो चाहे कल दे दें दर्शन उसको भगवान,
उचित नहीं है साधु करे अपनी विद्या का अभिमान।
हेय अध्ययन वह है जिससे नम्र नहीं बनता इन्सान,
प्रभु के सारे बन्दों को जो नहीं देखता एक समान,
छोड़ पाठशाला जाने का कहा शरण से जब सुविचार,
दिया दिलासा खोजेंगे वे अन्य स्थान दिन में दो चार।

एक दिवस ले गए राम को जंगल में गंगा के घाट,
बनी जहाँ पर थी वह कोठी जो कहलाती थी 'मौघाट',
सुना राम ने कोठी थी वह भव्य, किसी नृप का प्रासाद,
हवादार थी, सुन्दर, निर्जन जँची राम को निर्विवाद।

वहाँ प्रथम दिन ही जब बैठा सुबह शान्ति से करने ध्यान,
सहसा गंगा तट से आई गर्दभ की ऊँची द्रुत-तान,
वहीं नहीं, पर उसके पीछे चीख उठा उसका परिवार,
सक्रिय धोबी-घाट निकट ही देख राम ने किया विचार।

यहाँ न पल भर ठहरेगा वह जाएगा वन में घनघोर,
जहाँ न होगी कोई बाधा कर पाएगा वह तप घोर,
किन्तु शरण जी के कहने पर वहीं राम ने काटी रात,
और सुबह स्थल निर्जन पाने, चला राम उनके ही साथ।

लगे दिखाने वहाँ राम को आश्रम मंदिर जीर्ण अनेक,
किन्तु राम को नहीं सुहाया उसमें से मन्दिर भी एक,
फिर जा पहुँचे लिए राम को बियावान जंगल में पास,
किला जहाँ था बना एक दिन वैनार नृपति का आवास।

किन्तु आज था नहीं वहाँ पर उसका कोई भी अवशेष,
बना भाग था वह सारा ही बीहड़ निर्जन वन्य-प्रदेश,
वह प्रदेश था गंगा वर्णा दोनों सरिताओं के बीच,
जीर्ण वहाँ भी मंदिर थे कुछ खड़े काल से आँखें मींच।

उसे न भाया एक स्थान भी लगा सोचने हो असहाय,
वापस स्वर्गाश्रम जाने के रहा नहीं अब अन्य उपाय,
यही सोचता लगा छानने भीहड़ वन का पारावार,
तभी राम ने देखी सम्मुख उध्वस्त किले की दीवार।

चौड़ी थी वह दस बारह फुट था खिड़की सा उसमें छेद,
लगा राम तत्काल झाँकने भीतर का पाने को भेद,

कहा साथियों ने 'ठहरो तुम, जंगल है, कुछ करो विचार,
हो सकते हैं भीतर बैठे हिंसक वन्य-जन्तु खूँखार।
किन्तु राम ने सुनीं न उनकी उत्सुकता में कोई बात,
देखा, अन्दर बनी हुई थीं जीर्ण सीढ़ियाँ सी दो चार,
उतर सीढ़ियाँ भीतर देखा विद्यमान था कमरा एक,
लगभग छह फुट लम्बा-चौड़ा बना गंदगी का परिवेश।

स्थान भयानक वह था निश्चित किन्तु देख उसका एकान्त,
कोलाहल से त्रस्त राम का चित्त हो उठा सहसा शान्त,
हो रहे मित्र थे बाहर व्याकुल गया राम को भीतर देख,
बाहर आ जाने को कहते छोड़ हठी मन का अविवेक।
कहा रामने ऊपर आकर 'हुआ मनोरथ मेरा पूर्ण,
राम आज से यहीं रहेगा करने को साधन सम्पूर्ण।
स्थान भयावह था निर्जन भी किन्तु राम का निश्चय जान
तोड़ टहनियाँ पेड़ों से सब लगे साफ करने वह स्थान।

वही कन्दरा बनी भयानक उस दिन से उसका आवास,
एक समय भोजन करता वह संध्या को करता उपवास,
एक वृद्ध से सुना बाद में यही स्थान वह, गगनानन्द
जहाँ रहा करते थे पहले, हुआ राम को अति आनन्द।
बना हुआ जो एक तपस्वी के तप से पावन भू-भाग
मिले उसे यह निश्चित उसका सूचित करता था सौभाग
गगनानन्द गुफा के पीछे बहती थी वर्णा सुनसान,
और सामने एक बना था छोटा सा समतल मैदान।
बीचों बीच इसी प्रांगण के अब भी था चबूतरा एक,
चालिस फुट था लम्बा चौड़ा लगा राम को उसको देख,
गगनानन्द यहीं पर करते होंगे निज साधन-अध्यात्म,
वहीं राम ने रोज रात को किया शयन का निश्चय-आत्म।
नहीं गुफा में दरवाजा था अतः पहुँच जाते श्रृङ्गाल,
अथवा वृक सोया करते थे कर प्रवेश भीतर, विक्राल,
कभी-कभी ऐसा भी होता उसी मार्ग से आते देख,
जन्तु राम को, धक्का देकर निकल भागते थे अविवेक।
कई झुण्ड जंगली शूकर के वहीं किया करते थे वास,
किन्तु कभी भी किया न हमला देख राम को अपने पास,

इन पशुओं से अधिक भयानक थे दो पग वाले पशु घोर,
सुना राम ने था जंगल में विद्यमान हैं काफी चोर।
कहा राम से रामशरण ने रक्खे वह चोरों का ध्यान,
प्रभु पर निर्भर किन्तु राम के पड़ी न उसकी बातें कान,
कहा राम ने सहज हास से 'कहता है पातञ्जल-योग,
जहाँ अहिंसा विद्यमान है वहाँ नहीं हिंसा का भोग।
स्वयं व्यक्ति ही जब न चाहता करना औरों का नुकसान,
नहीं उसे दे सकता कोई कष्ट जानवर या इन्सान,
पातञ्जल के इसी सूत्र पर है मेरा पूरा विश्वास,
वही करे चिन्ता हो जिसके साथ नहीं प्रभु का सहवास'।
'किन्तु यहाँ तो लोटा कम्बल भी न छोड़ते हैं यह लोग'
कहा शरण ने विनय भाव से यत्किंचित मुख राम विलोक,
'और नहीं तो गुफा द्वार पर लगवा देता हूँ कीवाड़'
कहा राम ने 'इसका मतलब मुझे नहीं प्रभु पर विश्वास'।

'जैसी इच्छा' कहा शरण ने किन्तु विकल थे उनके प्राण,
नहीं जँचा था उनके मन को राम-कथित वह शास्त्र-पुराण,
प्रातः चार बजे के लगभग पावन हो धोकर मुँह हाथ,
शान्त चित्त से राम बैठकर करता साधन का संघात।

प्राणायाम शुरू में करके सिद्धासन पर हो आरूढ़,
राम ध्यान रत हो जाता था विस्मृत, सारे जग को भूल,
यत्न यही करता था हरदम सिद्धासन पर हो आसीन,
निर्विकार हो मानस उसका हो जाए वह सोच विहीन।
पहले-पहले हुआ न सम्भव कर सकता मानस को रिक्त,
सुप्त विचारों के जगते ही हो जाता मन चितासिक्त,
लेकिन मन की छलना से इस कभी न मानी उसने हार,
सतत यत्न से लग जाता था ध्यान कभी यदि क्षण दो चार।
निर्विकल्प वह क्षणिक स्वानुभव दे जाता उसको आनन्द,
दीर्घकाल तक जो रहता था कभी न जो होता था मन्द,
किया राम करता योगासन था नित्य ध्यान के उपरांत
और स्नान करता था जाकर वह शीतल गंगा में शान्त।
नित्य नियम से बैठ गुफा में साधन-जप-तप के पश्चात,
तीन बार एकाग्र हृदय से करता था वह गीता-पाठ,

नित्य कार्य यह करते-करते हो जाती थी काफी धूप,
तब घर जाकर रामशरण के हरता था वह अपनी भूख।
थोड़ा-सा विश्राम वहीं पर करता भोजन के उपरान्त,
और सांझ को लौट गुफा में आ जाता था वह निभ्रांत,
लगभग पाँच बजे संध्या को एक दिवस जब लौटा राम,
अन्दर से सुन आहट सहसा हुआ राम मन में हैरान।

लगा राम को होगा कोई भीतर पशु वृक या शृङ्गाल,
गया गुफा में यही सोचकर भाग उठेगा वह तत्काल,
किन्तु वहां था दृश्य और ही हुआ राम जिससे हैरान,
वन्य जन्तु था वहाँ न, पर था एक खड़ा मानव अनजान।
दरी, किताबें, कम्बल, लोटा, सबका सब सामान समेट,
चाह रहा था भाग जाय वह, प्रथम राम से होने भेंट,
बहुत देर से इसी सोच में था वह कैसे जाए भाग,
किन्तु चाहने पर भी सोए पैर नहीं थे उठते जाग।

स्वेद सिक्त हो रहा व्यक्ति था काँप रहा था सर्व शरीर,
यत्न बोलने का करते ही हकला उठती उसकी जीभ,
परवश उसकी देख दशा को उठा राम का हृदय पसीज,
प्रेम-भाव से जा सहलाई उसने तत्क्षण उसकी पीठ।
पूछा उससे अतिथि! मुझी से क्या करने आए हो भेंट?
कहो मित्र, क्यों उठा लिया है तुमने सब सामान समेट?
शौक तुम्हें है यदि पढ़ने का तो क्यों होते हो आक्रान्त,
बैठ खुशी से अतिथि पढ़ो तुम पोंछ पसीना, होकर शान्त'

कहा व्यक्ति ने 'अपराधी मैं, क्षमा करो मुझको श्रीमान,
मंद-बुद्धि मैं चाह रहा था साफ करूँ सारा सामान',
'मुझे नहीं आपत्ति तनिक भी चाहे ले जाओ सामान,
घटने वाला हो उससे दुख अगर तुम्हारा हे मेहमान'।
कहा व्यक्ति ने रोते रोते 'क्षमा करो मेरा अविचार,
जाने दो अब मुझको बाहर साधु करो मुझ पर उपकार,
छह घण्टे से यहीं खड़ा हूँ कैदी सा होकर निरुपाय,
पैर भूमि में धसने लगते जभी उठाता हूँ पग हाय'।
इतना कहकर रक्खा उसने थामें था जो अब तक भार,
लगा लोटने राम चरण पर त्राहि-त्राहि कर बारंबार,

कहा राम ने डरो न नाहक अब तुम किंचित भी हे मित्र,
हुआ सर्वदा ही करता है ईश्वर का इन्साफ विचित्र।
जहाँ देखने व्यक्ति न होता देखा करता है भगवान,
धोखा अपने को ही देता है फिर भी मानव नादान,
प्रभु का नाम निरन्तर लेते करो रोज का यदि व्यवहार,
पूर्ण कामना सभी करेगा निश्चय ही वह करुणाधार।
अच्छे खासे हृष्ट-पुष्ट हो तरुण छबीले से इन्सान,
पतित कार्य ऐसा करने से अच्छा है यदि दे दो प्राण,
बोल उठा वह अतिथि विनय से बहुत खोज की किन्तु न काम
मिला कहीं पर कई दिनों से भटक रहा हूँ मैं अविराम।
देख निकट साधन की वेला कहा राम ने तुमको काम,
दिलवाऊँगा निश्चित जानो करो मित्र अब तुम आराम,
तरुण व्यक्ति ने किया राम के चरणों पर फिर से प्रणिपात,
और राम आसन पर बैठा करने साधन का अभ्यास।
किन्तु ध्यान में रहे उभरते उसी बात के विविध विचार,
आने लगी सामने सूरत उसी व्यक्ति की बारंबार,
इसीलिए तो गीता कहती रुद्ध करो दस अपने द्वार,
जिनमें से मन बाहर जाकर लाता भीतर विविध विकार।
अंतरंग में वे विकार सब जब कर जाते हैं संचार,
कैसे धारण कर सकता मन प्रभु को जो है शून्य-विकार,
वहाँ दूसरे दिन आ पहुँचे रामशरण पाकर संवाद,
उसी समय वह व्यक्ति आ गया शेष न था मुख पर अवसाद।
उसी दिवस से नित्य नियम से करने लगा गुफा वह साफ,
और बाद में नौकर रक्खा उसे शरण ने अपने पास,
बोले रामशरण जी हंसकर सचमुच ही निश्चय बलवान,
राम तुम्हारा- कहीं न मैं भी ऐसा हो जाऊँ निष्प्राण।
उचित हुआ जो आ पहुँचे तुम सजग यहाँ का रख औसान,
व्यक्ति नहीं तो बना अहिल्या सा होता निष्क्रिय पाषाण,
कहा राम ने नहीं शक्ति है मुझमें यत्किंचित श्रीमान,
यह सब गगनानन्द तपस्वी के ही तप का है परिणाम।
इस घटना से किन्तु हो गया अब मुझको निश्चित विश्वास,
जगती के सारे सुख दुख का हम ही कारण हैं उद्भास,

रक्खें यदि हम अपने सारे सत्य, शुद्ध आचार-विचार,
कभी नहीं कर सकता कोई हमसे निश्चित दुर्व्यवहार।
इसीलिए तो स्थान बना था जहाँ रहा करते थे बुद्ध,
आस पास दस मील दूर तक दुराचार बिन अतिशय शुद्ध,
यहीं राम को एक विषैले गिरकिट ने आ काटा हाय,
फैला अंगुली में विष गहरा किए राम ने कई उपाय।
किन्तु नहीं जब ठीक हुई वह कहा डाक्टरों ने निरुपाय,
कटवा देना अंगुली को ही शेष बचा अब एक उपाय,
पर न राम ने सुनी किसी की किया ओम का ही उपचार,
हुई ठीक थोड़े ही दिन में रहा न उसमें तनिक विकार।
रोज द्वार पर सोटी आड़ी ऊपर रख देता था राम,
धोती लटकाने से उस पर देती वह पड़दे का काम,
राम एक दिन इसी गुफा में बैठा था होकर ध्यानस्थ,
निर्विकार था उसका मानस था समाधि सुख में वह मस्त।
तभी अचानक गिरि ढहने का हुआ भयानक शब्द खड़ाक्,
मानो सिर पर टूट गिरा हो छत उसके, वह रहा अवाक्,
लगा राम को उस बोझ से रुकी सांस है उसकी आह,
कठिन घुटन की पीड़ा से उस उठे राम के प्राण कराह।
होकर विकल कष्ट से उसके लगी निकलने मुँह से राल,
लगा उसे लो आ पहुँचा अब उसके सम्मुख काल कराल,
इसी अवस्था में बैठा था राम मिनट लगभग दस बीस,
होश नहीं था उसको अपना थी केवल प्राणों की टीस।
तभी राम से कहा व्यक्ति ने जो बैठा था बाहर एक,
हाथ जोड़कर विनय भाव से दशा राम की चिंतित देख,
क्षमा करो मुझको हे साधू हुआ बड़ा मुझसे अपराध,
मेरे ही धक्के से सोटी गिरी हुई जिसकी आवाज।
सुन अतिथि से घटना सारी हुआ राम को स्थिति का बोध,
वही शब्द घातक था जिससे हुआ समाधि में था अवरोध,
आया था वह अतिथि राम को ले जाने भोजन के काज,
कहा राम ने कृपा करो अब भोजन का रहने दो आज।
यह भोजन जो आज दिया है तुमने मुझको हे श्रीमान,
विवश भोगना मुझे पड़ेगा कई साल उसका परिणाम,

तभी अतिथि से कहा राम ने 'नहीं रहेगा क्षण भी एक,
राम यहाँ पर' कहकर उसने लिया सभी सामान समेट।

देख राम को आया घर पर चकित हुए अत्यन्त सहाय,
सुनी उन्होंने घटना सारी सोचा अंतिम एक उपाय,
कहा राम से 'नगरपालिका का मैं ही तो हूँ अध्यक्ष,
उसकी ही सीमा में स्थित है राम आपका जंगल कक्ष।
कल ही से लो कर देता हूँ ऐसा एक न एक प्रबन्ध,
रहे न जिससे और किसी का उस वन से कोई सम्बन्ध',
कहा राम ने 'आभारी है राम आपका शत-शत बार,
नहीं यहाँ अब रहने देंगे सिर के दु:खद असह्य प्रहार।'

उस दिन रामशरण के ही घर किया राम ने भोजन-स्नान,
उनके ही कहने पर उसने किया लखनऊ को प्रस्थान,
नहीं लगा मन किन्तु वहाँ भी अब भी थे वे ही आघात,
चाह रहा था फिरूँ अकेला बीहड़ जंगल में दिन-रात।

अत: वहाँ से पहुँचा सत्वर राम अयोध्या पावन धाम,
मणि-पर्वत पर जहाँ बना था रम्य मनोहर मंदिर-राम,
वह था फैजाबाद निकट ही सुन्दर मंदिर साधन-शील,
दूर नगर से होगा केवल लगभग तीन-चार ही मील।

पढ़े-लिखे सब लोग निकट से आते थे करने सत्संग,
वहीं ओम् उच्चार जोर से करता रहता राम, अभंग,
सिर में प्रस्तुत आघातों से बना राम था असहाय,
सतत ओम का उच्चारण ही लगा उसे, था शेष उपाय।

एक दिवस वह इसी भाँति था बैठा करता प्रणवोच्चार,
खुली आँख जब देखा सम्मुख बैठे थे सज्जन दो-चार,
सरस राम के प्रणव गान से हुए सभी थे विस्मृत आत्म,
ओमकार के ही स्वरूप पर हुई बहुत चर्चा अध्यात्म।

कहा राम ने 'बिना ओम् के नहीं विश्व में कुछ भी और,
सर्व सृष्टि के जड़-चेतन का एक ओम् ही है सिरमौर,
वहीं विश्व का उत्पादक है वही कराता सारे काम,
वही इन्द्रियों का निश्चित सब संचालक है आत्माराम।

कहा राम से बहुत उन्होंने रहे राम उनके ही पास,
किन्तु राम अब खो बैठा था मानव पर सारा विश्वास.
जाता था वह बाहर करने स्नान रोज सरयू के घाट
डरता था मानव से जैसे देख बाघ डरती मृग-जात।

बहुत दूर तक निकल गया था एक दिवस सरयू के तीर,
बने घाट थे दूर-दूर तक थी घाटों पर अति भीड़,
निर्जन एक घाट को देखा, लगा राम को बैठे शान्त,
देखे सरयू की लहरों का सुन्दर नर्तन चंचल श्रान्त।

सम्मुख गोलाकार शिला सी पड़ी एक पानी में देख,
उस पर रक्खा पैर राम ने देखा निकले पैर अनेक,
अकस्मात् उसके नीचे से, जो था बैठा कछुआ एक,
लगा गया वह डुबकी नीचे दिया राम को जल में फेंक।

कुछ ही दिन में मिला राम को योगानन्द लिखित संदेश,
गया वहाँ से माण्डुक्याश्रम, करने पूर्ण साधना शेष,
यह जीवन भी एक पहेली है निश्चित अत्यन्त अजीब,
बात हमें जो आज सुहाती कल बन जाती दुःख का बीज।

उस आश्रम में राम गया था सत्य तत्व की करने खोज,
किन्तु विवश हो वहाँ राम को करना पड़ा साध्य हठयोग,
अभी न जाने कितने साँचों में ढलना था जीवन शेष,
किन्तु दिया था उसे विधाता ने अच्छा आरोग्य विशेष।

सारे ही आश्रम वासी थे वहाँ पेट-निःशेष समान,
एक राम ही हृष्ट-पुष्ट था सबल देहधारी, बलवान,
किया राम ने निश्चय मन में अन्य साधकों को कृश देख,
वर्ज्य अन्न करके वह अपनी देह घटाएगा सविशेष।

बनी नीम की पत्ती सूखी और घास उसका आहार,
राम लगा करने सब आसन सफल हुआ उसका निर्धार,
निकट बुलन्दशहर ही के था माण्डुक्याश्रम का परिवेश,
अब भी था माण्डुक्य ऋषी का एक पुराना मंदिर शेष।

कुछ दिन पहले इस आश्रम के सद्महंत थे योगानन्द,
उन ही के श्रम से आश्रम का था अति वातावरण प्रसन्न,
दस-बारह कुटियों में रहते थे आश्रम के साधक लोग,
वहीं होमियोपैथी का था इन्तजाम, हरने को रोग।

आसपास से रोगी आते करवाने अपना उपचार,
किन्तु दवा का वहाँ किसी को ज्ञान नहीं था पूर्ण प्रकार,
देख राम का योगी जी ने अंग्रेजी का अच्छा ज्ञान,
कहा तुम्हीं बन जाओ डाक्टर करो दवा लोगों को दान।

कहा राम ने उसे नहीं है बिल्कुल रोगों की पहचान,
और न औषधियों के नामों का उसको किंचित् भी ज्ञान,
योगी जी हँस पड़े जोर से कहा 'बने साधू बेकार,
यदि न कर सको होम्योपैथी के समान सीधा उपचार।

रख लो पेटी औषधियों की और मेडिका पुस्तक पास,
जो भी रोगी आए उससे पूछो तुम उसका इतिहास,
साथ चिन्ह रोगों के पूछो पाओ उन सब का आभास,
इसी भाँति तो होगा निश्चित तुम पर रुग्णों का विश्वास।

एक दवा यदि काम न दे तो करो दूसरी का उपयोग,
होगा रोगी भाग्यवान तो हट जाएगा उसका रोग,
ऐसे ही अभिवृद्ध तुम्हारा होगा औषधियों का ज्ञान,
सरल तुम्हें फिर हो जाएगा बिल्कुल, करना रोग-निदान।'

नहीं बात यह जँची राम को पर माना उसने आदेश,
कुशल चिकित्सक का परवश हो किया राम ने धारण वेश,
बना तरुण तेजस्वी डाक्टर लगा बाँटने औषधि राम,
आने लगे लोग अधिकाधिक लगा उन्हें होने आराम।

देख रोगियों में महिलाएँ और गुप्त उनके सब रोग,
उसके मन की सुस्थिर स्थिति में क्षण भर हो जाता अवरोध,
लगा राम को इससे होगा निश्चित उसका साधन भंग,
जा धमका वह योगी जी के पास, चाबियां लेकर संग।

फेंक चाबियाँ उनके सम्मुख कहा नहीं सम्भव महाराज,
करे एक साधक मुझ जैसा मन-भ्रामक यह दुष्कर काज,
मैं समझा था यह आश्रम है मेरे साधन के अनुकूल,
पर असाध्य वह देख राम ने ठानी है जाने की दूर।

अपने कमरे में जाकर वह लगा सोचने होगा कौन,
स्थान राम के योग्य सर्वथा लगी आँख चिन्ता में मौन,
देखा उसने निद्रा में ही भव्य खड़ा संन्यासी एक,
तेजपुंज सा उसके सम्मुख देता उसको ही आदेश।

"स्थान नहीं यह योग्य तुम्हारे, सत्य तुम्हारा है सुविचार,
हरद्वार तुम जाओ सत्वर करो न तुम चिन्ता बेकार,
हरद्वार से बीस मील है स्वर्गाश्रम का स्थान सुरम्य,
डेढ़ मील उसके आगे है एक गुफा मन भावन रम्य।

दृश्य मनोहर वह गिरि-स्थल है योग्य तपस्या के नितान्त,
वनश्री है रमणीय वहाँ पर वहीं करो साधन एकान्त",
जिस-जिस स्थल का दिव्य पुरुष वह करता जाता था उल्लेख,
उसी स्थान का चित्र बना सा सम्मुख राम रहा था देख।

किया राम ने निद्रा में ही निश्चय जाएगा उस स्थान,
खुली आँख तो देखा उसने दिव्य पुरुष था अन्तर्धान,
किन्तु दृश्य वे सारे उसके अब भी सम्मुख थे साकार,
देख रहा था मन्त्र मुग्ध सा राम अजब वह दिव्य प्रकार।

नहीं पास थे पैसे उसके पर न उसे था उसका खेद,
पैदल ही जाने को तत्पर, हुआ राम सामान समेट,
दो धोती, लंगोट, उपनिषद गीता, जर्जर कम्बल एक,
लिए राम चल पड़ा वहाँ से ध्येय सामने अपना देख।

कहा राम ने जा योगी से जाने का, अपना निर्धार,
बिगड़ उठे वे, कहा उन्होंने 'करो न तुम बातें बेकार,
नहीं कभी भी जा पाओगे, तुम मेरी आज्ञा को तोड़,
रहो, सम्भालो इस आश्रम को जाने की इच्छा दो छोड़।'

किन्तु राम ने सुनी न योगी जी की जब कोई भी बात,
हुए दुखित वे और क्रुद्ध भी हुआ उन्हें काफी सन्ताप,
जब न सके वे रोक राम को किया उन्होंने शक्ति प्रयोग,
किया गमन के ठीक समय पर आँधी-पानी का उपयोग।

धुआँधार वर्षा आ धमकी आया घिर आँधी-तूफान,
लगी कड़कने बिजली भीषण काँप उठा वह सारा स्थान,
किन्तु राम का निश्चय दृढ़ था निकल पड़ा वह आश्रम छोड़,
ठीक समय पर योग शक्तियाँ सकीं न उसका निश्चय तोड़।

दिन भर पैदल चलकर वह था करता सन्ध्या को विश्राम,
किसी शान्त एकान्त स्थान पर, ठहर रात करने आराम,

एक दिवस जब किसी गाँव के मन्दिर में ठहरा था राम,
समझ उसे लोगों ने साधू पहुँचाया भोजन अभिराम,
और दूसरे दिन जब देखा साधू को करते प्रस्थान,
रेल–किराया बिन माँगे ही दिया सभी ने मिलकर दान ।

इने-गिने उस भाड़े से बस पहुँच सका मेरठ तक राम,
लगा पूछने लोगों से वह कहाँ जाय करने विश्राम,
बतलाए लोगों ने उसको स्थान ठहरने योग्य अनेक,
किन्तु जँचा तत्काल राम को सूर्य–कुण्ड ही उनमें एक ।

पकड़ी उसने तत्परता से जो थी सूर्य–कुण्ड की राह,
तेज दोपहर में चलने सें उठे राम के प्राण कराह,
पहुँचा जब वह सूर्य–कुण्ड पर लगा उसे अच्छा वह स्थान,
किन्तु उष्ण उस दोपहरी में बना स्थान था वह सुनसान ।

चारों ओर घाट थे पक्के मध्य बना था कुण्ड विशाल,
आस-पास थे मठ यतियों के, थी ठण्डी धुनियाँ उस काल,
क्षण भर देखा उन धुनियों को विकल राम ने निर्निमेश,
और पोटली रख दी नीचे एक वृक्ष की छाया देख ।

सूर्य-कुण्ड पर जाकर उसने धो डाले अपने मुँह-हाथ,
लिए पोटली सिर के नीचे लेटा जप करता, मन नाथ,
शीतल छाया में जप करता जा पहुँचा निद्रा की गोद,
आँख खुली जब, देखा उसने लोगों को करते आमोद ।

बनी सूर्य-किरणों थीं कोमल अरुण हो रहा था आकाश,
सन्ध्या की काली अलकों में दिन का था छिप रहा प्रकाश,
नयन-मनोहर सन्ध्या-छवि का भरा गगन में था अनुराग,
मानो सन्ध्या दिग्-मण्डल से खेल ‘उठी हो मधुमय फाग ।

उठ बैठा तत्काल राम तब देख निकट दिन का अवसान,
करने लगा पाठ गीता का अब न स्थान था वह सुनसान,
क्रमशः लौट रहे थे साधू रंग-विरंगे पहने वस्त्र,
लगे बैठने आकर धुनि पर दिन भर धन करके एकत्र ।

धूम्रपान चल पड़ा जोर से जगी पुनः धुनियों की आग,
उन यतियों की कुटिल दृष्टि का हुआ राम पर भी अनुराग,
सन्ध्या को यति-दर्शन करने आ जाते थे बूढ़े लोग,
वहाँ निरन्तर होता रहता चरस-धतूरे का उपयोग ।

एक साधु ने कहा वृद्ध से निकट राम को बैठा देख,
यहीं बुला लो उसे, वहाँ है वह देखो संन्यासी एक,
गया राम पाकर बूढ़े से साधू का भेजा संदेश,
वहाँ जहाँ बैठे थे साधू अपने मुखिया यति को देख।

सभी साधू पी रहे चिलम थे बैठे सुलफे की दम मार,
घूम रही थी चिलम हाथ में सबके क्रमशः बारम्बार,
कहा राम से मुखिया ने, ले धूम्रपान में वह भी भाग,
किन्तु राम ने कहा 'नहीं है यह सब मेरे तप का भाग।'

बोला यति, 'साधू हो कैसे, होगा कैसे साधन पूर्ण,
यदि इस देवी की ही तुमने कृपा न हासिल की सम्पूर्ण,
कहा राम ने नहीं साधु मैं बनने का करता हूँ यत्न,
यश-अपयश प्रभु के ही वश में किन्तु करेगा राम प्रयत्न।'

तभी शब्द साधू' को लेकर किए सभी ने व्यक्त विचार,
कहा राम ने 'वही साधु है जिसमें होते हैं न विकार,

काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह के जिसने धो डाले हों दाग,
प्राप्त उसी को सच्चा साधू कहलाने का है सौभाग।'

कहा राम ने हिन्दी में, तब उसे न था उस पर अधिकार,
शब्द फिरंगे, संस्कृत के भी निकल पड़े मुँह से दो-चार,
सुने राम के मुँह से बाबा ने जब अंग्रेजी के शब्द,
'फिस फिस क्या करता है' बोले बड़े क्रोध से हो अनुतप्त।

पड़ते ही यह चिमटा सिर पर विस्मृत हो जाएगा ज्ञान
नागापंथी बाबाजी को रहा न गुस्से में कुछ भान,
किन्तु राम अभ्यस्त नहीं था सहने में अपना अपमान,
उठा तमतमा तेजपुंज मुख कहा राम ने भौएँ तान।

'यही तुम्हारा क्या साधूपन करना टुकड़ों पर निर्वाह,
और दिखाना चिमटे का भय ? मुझे नहीं उसकी पर्वाह,
'नहीं लाज किंचित् भी तुमको चूर नशे में रहते भ्रांत,
क्षण भर में लो कर देता हूँ नशा तुम्हारा सब मैं शान्त।

चिमटा थामे उठा साधु का उठा रहा ऊपर ही हाथ,
हुई जलन की पीड़ा भीषण काँप उठे उसके सब गात,
इस घटना से लगे समझने लोग उसे प्रभु का अवतार,
मिटे विघ्न सब, तत्परता से लगे लोग करने सत्कार।

उस बूढ़े ने कहा विनय से करे राम उसका उद्धार,
एक बार उसके घर जाकर राम करे भोजन स्वीकार,
लिया राम ने आमंत्रण वह नम्र भाव बूढ़े का देख,
प्रोफेसर था उसका बेटा सज्जन, उसी शहर में एक।

नेक पुत्र था पुत्र-वधू भी थे, दोनों ही भावुक भक्त,
देख साधु को आया घर पर हुए सत्वगुण पा अनुरक्त,
कहा अनुग्रह से दोनों ने राम वहीं पर करे निवास,
किन्तु राम के 'ना' कहते ही हुए भक्त अत्यन्त उदास।

बेटा था अनभिज्ञ, पिता था बना व्यसन का अतिशय दास,
मुक्त उसी से होने को था जाता उन यतियों के पास,
गए दूसरे ही दिन वे सब सूर्य-कुण्ड पर करने स्नान,
देखा उस दिन के बाबा का गायब था सारा औसान।

उसी रात बारह के लगभग हुआ भयानक उसको रोग,
लगा निकलने रक्त गुदा से सकी न उसको औषधि रोक,
लगा उसे वह बीमारी है राम-रोष का ही परिणाम,
देख राम को, आया सम्मुख जिससे वह कर सके प्रणाम।

पकड़ लिए बढ़ आगे उसने चरण राम के हो भयभीत,
शान्त हुई कुछ जलन देह की पाकर पग का स्पर्श पुनीत,
किया उसे आश्वस्त राम ने नहीं शक्ति है मेरे पास,
करे तुम्हें अस्वस्थ दुःखद या करे प्राणियों का जो ह्रास।

शायद हो यह उसी तुम्हारी 'चिलम भगवती' का वरदान,
छोड़ उसे दो यति तुम सत्वर यही तुम्हारा रोग निदान,
सोचो क्षण भर तुम आए थे बनने साधू घर से भाग,
समझ पिता, माता, पत्नी को पथ की बाधाएँ परित्याग।

और बने हो आज यहाँ पर मादक द्रव्यों के तुम दास,
क्या अधिकार तुम्हें, यतियों को करो राष्ट्र सम्पति का नाश,
लौटे जब सब घर पर, होकर स्नान-ध्यान पूजा निवृत्त.
आ बैठे सब निकट राम के बोल उठा हो गद्‌गद् वृद्ध।

कहें मुझे क्या करे आपके चरणों की सेवा यह दास,
देख सामने सुन्दर अवसर जगा राम-मन में उल्हास,
कहा राम ने 'सुलफे' पर तुम जितना भी करते हो खर्च,
उतना ही धन दिया करो तुम मुझको, सुलफा करके वर्ज्य।'

बात राम की सुनते ही वह वृद्ध हुआ सहसा अवसन्न,
किन्तु पुत्र के साथ-साथ ही पुत्र-वधू भी हुई प्रसन्न,
कहा राम से आखिर उसने, अपनी परवशता को भूल,
छोड़ नशे को देने का वह, यत्न करेगा सब भरपूर।

आया पहुँचाने स्टेशन पर किया राम ने जब प्रस्थान,
पाँच रुपये दे दिए राम को हृषीकेश का भाड़ा दान,
पहुँचा राम दूसरे ही दिन हरद्वार, कर गंगा पार,
नौका से, स्वर्गाश्रम जाकर हुआ मुदित वह दृश्य निहार।

वहाँ देख भोजन पाने को यतियों की अति दीर्घ कतार
और अन्न देने वालों का यतियों से कुत्सित व्यवहार,
देख घिनौना दृश्य राम का हुआ चित्त अत्यन्त उदास,
मुट्ठी भर भोजन के पीछे व्यक्ति उठाता कितना त्रास।

लगा राम को स्वर्गाश्रम भी वना नर्क का ही आवास,
जहाँ प्राप्त करके भी भोजन शेष बना रहता उपवास,
रक्खे हैं उस प्रभु ने वन में कंद-मूल इतने भरपूर,
कर सकते हम क्यों न तपस्या क्षुधा उन्हीं से करके दूर।

किया राम ने मन में निश्चय वह न जायगा ऐसे स्थान,
उदर पूर्ति करने को निश्चित रहे न चाहे उसके प्राण,
स्वर्गाश्रम से नीलदेव का महादेव था थोड़ी दूर,
इसी स्थान का अन्य नाम था भूतनाथ पर्वत मशहूर।

नयन-मनोहर छवि थी वन की आकर्षक अत्यन्त सुदाम,
दूर-दूर तक वन फैला था हरित, सघन, शीतल अभिराम,
दिन में भी थे वहाँ विचरते वन्य जन्तु हिंसक विक्राल,
जंगली हाथी नित्य रात को करते रहते थे चिग्घाड़।

उसी रम्य गिरि के आँचल में दिखी राम को गुफा सफेद,
नैसर्गिक थी पर उसमें था छोटा सा दरवाजा एक,
दस फुट लम्बी और आठ फुट चौड़ी होगी वह गिरि खोह,
अन्दर था पक्का चबूतरा एक व्यक्ति के सोने योग्य।

मन वांछित वह स्थान देखकर हुआ राम को अति आनन्द,
रख अपना सामान गुफा में किया भ्रमण वन में स्वछन्द,
एक और था ध्येय भ्रमण का देखे वह जंगल को छान,
मिले कदाचित् वहीं कहीं पर कंद-मूल, फल का संधान।

वृक्ष पास थे लगे वेल के और आँवले से भरपूर,
झरना भी था मधुर नीर का वहीं गुफा से थोड़ी दूर,
किया राम ने वहीं दूसरे ही दिन से साधन आरम्भ,
अरुणोदय के पहले ही वह नित उठ जाता था अविलंब।

धो मुँह-हाथ बैठ जाता था आसन पर वह करने ध्यान,
और उजाला हो जाते ही करता आसन प्राणायाम,
था अभ्यास उसे करने का साठ आसनों का व्यायाम,
नित्य तीन घण्टे लगते थे पूरा यह करने में काम।

उदित सूर्य पर आँखें स्थिर कर त्राटक नित करता था राम,
किन्तु शुरू में दृष्टि सूर्य पर नहीं ठहरती थी अविराम,
धीरे-धीरे लगी सूर्य पर स्थिर होनें आँखें कुछ काल,
मन एकाग्र हुआ अधिकाधिक करके रवि पर दृग संचाल।

तत्पश्चात पढ़ा करता था राम उपनिषद, गीता नित्य,
जल में गूदा घोल वेल का लेता था आहार निमित्त,
कई माह तक यही कार्यक्रम सतत रहा चलता अविराम,
अव घण्टों तक सिद्धासन पर सहज बैठ सकता था राम।

वहाँ पुस्तकालय रामाश्रय से ले आता ग्रन्थ अनेक,
उन ग्रन्थों के अवलोकन से सत्य राम ने देखा एक,
किसी एक इच्छा पर कर लें यदि हम अपना मन एकाग्र,
वन जाएगी इच्छा निश्चित फलदायी होकर बलवान।

रखना पड़ता था, उसको नित जब भी करता प्राणायाम,
ध्यान समय का, पालन करने एक, चार, दो का अनुपात,
लगा राम को एक घड़ी यदि पहुँचा दे उसको भगवान,
तभी वहाँ हो सकता उसको सुलभ समय का रखना ध्यान।

नहीं आज तक फैलाया था प्रभु के सम्मुख उसने हाथ,
उपयोगी थी सभी भक्ति के जो थीं चीजें उसके पास,
लगा उसे प्रभु उसकी रक्खे आवश्यकताओं का ध्यान,
बिन मांगे वह उसे स्वयं ही किया करे वह वस्तु प्रदान।

कहा राम ने मन ही मन में इतनी छोटी सी भी माँग,
देकर मुझको घड़ी न तुम क्या पूरी कर सकते भगवान,
सिद्धासन पर बैठा था वह एक दिवस, तक यही विचार,
आया मन में और साथ ही किया दूसरे ने संचार।

यदि इच्छा में कर पाये वह शक्ति जरा सी भी उत्पन्न,
निश्चित उसकी मनोकामना पूर्ण करेंगे प्रभु सम्पन्न,
बैठे रोज की भाँति दोपहर 'घड़ी चाहिए' लिखकर शब्द,
चिपकाया उसने दीवाल पर कागज का टुकड़ा उपलब्ध।

किए रहा वह त्राटक उस पर लिए वही मन में सुविचार,
ढाई घण्टे बाद अचानक बाहर से सुन पड़ी पुकार,
मै आया हूँ दर्शन करने खोलो दरवाजा श्रीमान,
एकचित्त साधन में उसके आई नूतन बाधा जान।

हुआ राम विक्षुब्ध एक क्षण जाकर उसने खोला द्वार,
उसे न भाता था किंचित् भी वहाँ करे कोई संचार,
देख राम को सम्मुख अपने करने लगा अतिथि प्रणिपात,
लगा राम को निश्चित वह है व्यक्ति किसी कुल का अभिजात।

लिया राम ने उसको भीतर पूछे उसने प्रश्न अनेक,
'क्या खाते हो, करते हो क्या' रिक्त गुफा को बिल्कुल देख,
'सदावर्त पर जाकर तुम क्यों नहीं लिया करते आहार,
कर पाओगे साधन कैसे ऐसे रहकर निर आहार'।

कहा राम ने 'दे रक्खे हैं प्रभु ने बहुत कन्द-फल मूल,
नहीं योग्य तज साधन जाऊँ क्षुधा-मुक्त होने को दूर,
बोल उठा वह, 'किन्तु यहाँ पर हैं पर्वत दो खड़े महान,
रहकर उनके मध्य, समय का रखते हो तुम कैसे ध्यान ?'।

देख सामने लटका कागज चकित हुआ वह व्यक्ति अवाक्,
'तो तुमको है घड़ी चाहिए ?' कहा व्यक्ति ने ऊपर ताक,
और दूसरे ही दिन उसने घड़ी राम को ला दी एक,
हुआ पूर्ण विश्वास राम को अभिनव अपना अनुभव देख।

हम अपनी यदि कोई इच्छा करके मन में अति बलवान,
करें मनन उसका ही हरदम पूर्ण काम प्रभु का कर ध्यान,
तो निश्चित वह इच्छा होगी फलीभूत थोड़े दिन बाद,
आ जायेगी उसमें अतुलित करुणामय की शक्ति अगाध।

आगे चलकर किए राम ने ऐसे ही कुछ अन्य प्रयोग,
हुए सफल जब वे सारे ही हुआ राम के मन में बोध,
कुन्जी सफलता की निश्चित है सकल हमारा ही विश्वास,
आवश्यक है केवल इच्छा बल का होना अपने पास।

इसी तत्व के उद्घाटन से मिली राम को शक्ति अपार,
हुआ इसी से उसके मन में दृढ़ निर्भयता का संचार,
धीरे-धीरे लगे पहुँचने तरुण तपस्वी उसके पास,
उसके निर्देशन में करने कठिन आसनों का अभ्यास।

एक दिवस था राम गुफा में बैठा करता साधन ध्यान,
नौ के लगभग समय हुआ था, था बाहर सारा सुनसान,
सुना राम ने बाहर कोई ठीक रहा था उसका द्वार,
और मुँह में रह-रहकर करता 'नारायण' उच्चार।

खोला द्वार देखा, सम्मुख था खड़ा साधु बाहर अनजान,
द्युतिमय अपने सारे तन पर वस्त्र गेरुए कर परिधान,
आकर्षक थी मूर्ति साँवली सौम्य भाव था मुख पर एक,
किया राम ने स्वागत उसका तेज-पुंज वह साधू देख।

आया था वहाँ राम से पाने को आसन का ज्ञान,
कहा राम से उसे करे वह योगासन का ज्ञान-प्रदान,
किया राम ने बड़े प्रेम से उसकी इच्छा को स्वीकार,
लगा सिखाने रोज उसे वह योगासन के सभी प्रकार।

देखा राम का तन लचकीला हुआ उसे आश्चर्य अपार,
कहीं न हो जैसे उस तन में कोई हड्डी का आधार,
कहा 'तुम्हारा बिन हड्डी के ही शायद है बना शरीर,
झुका उसे लेते हो चाहे जैसे' कहकर हुआ अधीर।

आगे चलकर सुना राम ने शिवानन्द था उसका नाम,
वह ही योगी ऋषिकेश में जिसने इतना पाया नाम,
हुआ प्रेम दोनों में अतिशय बैठे रहते थे वे साथ,
घण्टों तक वेदान्त विषय पर चर्चा करते थे अभिजात।

राम सभी करता था साधन पर त्राटक का ही नितांत,
उसे शौक था, करता था वह दीर्घ काल तक त्राटक शांत,
है विशेषता त्राटक की यह दृग की निश्चलता के साथ,
अचल विचारों को भी करता मानस पर कर के संघात।

कई बार जंगल में जाकर पर्वत की चोटी पर बैठ,
करता त्राटक किसी पेड़ पर सभी विचारों को वह एठ,
शेष समय में करता था वह हरदम मुँह से प्रणवोच्चार,
जिससे उसके रोम-रोम में हुआ प्रणव का ही संचार।

कभी बन्द यदि हो जाता जप रुक जाती थी उसकी साँस,
निश्चित अब दम घुट जाएगा उसको होने लगता भास,
पढ़ा राम ने यदि हम कोई धारण करके मन में भाव,
लगें ताकने औरों पर तो होगा उन पर वही प्रभाव।

उतर रही थी संध्या नभ में निकट दिवस का था अवसान,
विहग पंक्तियों में उड़ते थे करने नीड़ों को प्रस्थान,
लगी उतरने नीचे रजनी करने जगती को विश्रांत,
राम घूम वन से आ बैठा करने सन्ध्या-साधन शान्त।

कृष्ण पक्ष था माह जून का मेघाच्छादित था संसार,
ढलते ही सूरज के नभ से पड़ा सृष्टि पर तम का पाश,
उसी समय आ बाहर कोई करुण शब्द में उठा पुकार,
'थका अतिथि हूँ, मुझको आश्रय महाराज दो, खोलो द्वार।'

देखा बाहर खड़ा हुआ था एक व्यक्ति बिल्कुल अनजान,
नीचे धोती, ऊपर कपड़े किए टाट के सब परिधान,
देख दुर्दशा उसकी अतिशय उठा द्रवित हो मन में राम,
लिया गुफा में भीतर उसको कहा 'यहाँ कर लो विश्राम'।

सोच रहा था ध्यान करेगा साधू के जाते ही लेट,
बैठ गया पर वह दृढ़ता से सोटी, गठरी साथ समेट,
जला मोमबत्ती को देखा बैठा था वह आसन मार,
मुँह ही मुँह कुछ कहता जाता करता रह-रहकर फुंकार।

जमा राम पर अपनी आँखें घूर रहा था वह चुपचाप,
जिससे अति भयभीत सहज हो जाए वह अपने ही आप,
आया उस पर क्रोध राम को देख अजब उसका व्योहार,
तनी राम की भौंहें सहसा लगा देखने दृग विस्फार।

स्थिर कर अपनी दृष्टि साधु पर वीरभद्र का करने ध्यान,
लगा देखने जब साधू को लुप्त हुआ उसका औसान,
कहा साधु ने हकलाकर ही लो सो जाता हूँ श्रीमान,
उठा तर्जनी, कहा राम ने तीखे स्वर में, भौंहें तान।

खबरदार यदि शब्द किया तो सो जाओ बिल्कुल चुपचाप,
लेट गया वह साधु तत्क्षण बिन बोले, कुछ, उर में काँप,
प्रातः उठकर देखा साधू अब भी था निद्रा में मस्त,
आठ बजे उठ स्वर्गाश्रम को चला स्वानुभव से हो त्रस्त।

लगा राम को पता बाद में डाकू था वह व्यक्ति महान,
तंत्र-मंत्र से लूट जनों को करता था वह नित्य प्रयाण,
इस प्रयोग से हुआ राम को त्राटक पर पूरा विश्वास,
लगा उसे क्यों आवश्यक यह बने विश्व से व्यक्ति उदास।

काम, क्रोध, मद, मोह छोड़ सब रहे चित्त यदि प्रभु के साथ,
तो निश्चय ही करुणामय वह हर लेगा दुःख, भय, भव-ताप,
इसी तरह तो सफल हुए थे भक्त शिरोमणि तुलसीदास,
तुकाराम, ज्ञानेश्वर, मीरा एक यही रखकर विश्वास।

सुन यतियों के कार्य अनैतिक हुआ राम का चित्त उदास,
किन्तु गुफा में एक माह तक किया राम ने और निवास.
आ पहुँचे तब वहाँ एक दिन सहसा स्वामी योगानन्द,
बड़े प्रेम से बोले, उनको हुआ राम से मिल आनन्द,
किया राम से वापस आश्रम चलने का अतिशय अनुरोध,
वचन-बद्ध वे हुए करेंगे नहीं साधना में अवरोध,
चला राम उस छोड़ गुफा को नत-मस्तक होकर साभार,
जिसने अब तक वहन किया था उसके साधन-तप का भार।

गया वहाँ से स्वर्गाश्रम वह योगी जी का कहना मान,
नहीं सुहाया उसको लेकिन वहाँ साधुओं का संधान,
किया राम ने गंगोत्री को एक दिवस सहसा प्रस्थान,
मिला मार्ग में उसे अचानक रामतीर्थ का पावन स्थान।
अधिक नहीं है, तीन मील ही बाग टेहरी से पड़ियाल,
देख जहाँ पर रामतीर्थ की पर्णकुटी, वह हुआ निहाल,
गंगा तट पर कुटी खड़ी थी कोलाहल से हटकर शान्त,
रहा राम उस पर्णकुटी में करने निज साधन एकान्त।
यहीं राम को शक्ति उपासक मिला अचानक साधू एक,
सीखी उससे शक्ति-साधना का उसने सब तंत्र-विशेष,
हुई वहीं पर दिनकर माण्डे जी नामक सज्जन से भेंट,
आर्किटेक्ट थे प्रमुख फौज के वे ग्रहस्थ श्रृद्धालू नेक।
पहले भी थे मिले नाव में करते गंगा जी को पार,
विप्र यजु-शाखा के थे वे संत-भक्त अत्यन्त अपार,
हुआ अचानक उनके मन में राम भेंट से अतिशय मोह,
किया राम से सिमले आने का माण्डे जी ने अनुरोध।

रहा राम जाकर सिमले में दस पंद्रह दिन उनके पास,
राजस वातावरण वहाँ का देख किन्तु वह हुआ उदास,
किसी भाँति कर लेता था वह अपना साधन-पूजन शान्त,
और खोजता रहता था वह अन्य स्थान कोई एकांत।
राम मंगा लेता था माचिस भीतर से बच्ची के हाथ,
धूप जलाने को वह प्रायः बिना किए माता से बात,
देखा करता था न राम तब किसी नारि के मुख की ओर,
नहीं बात नारी से करता सपने में भी आत्मविभोर।

माचिस पर होता था चिपका किसी नारि का सुन्दर चित्र,
उसको फाड़ दिया करता वह, कार्य राम का लगा विचित्र,
माण्डे जी की धर्म-पत्नी को किन्तु रहीं वह बिल्कुल मौन,
लेकिन उसने सोचा साधू नारी-द्वेषी है यह कौन।
कई साल के बाद कुंभ में हुई राम से जब फिर भेंट,
और राम ने बातचीत की पति से उसकी पत्नि समेत,
धर्म-पत्नी ने कहा राम से हास भरे स्वर में चुपचाप,
'कृपया बतलाएँ बिगड़े हैं अथवा सुधर गए हैं आप।'

नहीं देखते थे नारी का कभी स्वप्न में भी मुख आप,
समझा करते महिलाओं से बात-चीत करना भी पाप,
किन्तु आज मैं देख रही हूँ नहीं आप करते संकोच,
कुशल-क्षेम पूछा करते हैं महिलाओं को आप विलोक।
कहा राम ने 'टंकन-कर्ता सीख रहा होता जब काम,
उसे ध्यान रखना होता है सभी अंगुलियो का अविराम,
किन्तु सीख जाते ही टंकन सहज साध्य हो जाता काम,
बन्द लोचनों को करके भी कर लेता टंकन अभिराम।

सुनते ही वह बात राम की हुआ उन्हें अतिशय आनन्द,
और बढ़ी श्रद्धा अधिकाधिक हुई न वह यत्किंचित् मंद,
किया राम ने कुछ ही दिन में आगे जमुनोत्री का प्रस्थान,
किन्तु किसी बाधा ने पथ में नहीं किया उसका सम्मान।
जमुनोत्री पर पहुँच राम ने वस्त्र दिए सब अपने त्याग,
चला वहाँ से गंगोत्री वह पथ की बाधाएँ परित्याग,
किन्तु उसे कर छोड़ा पथ में अकस्मात ज्वर ने आक्रान्त,
हुआ निरन्तर प्रणव जाप से आखिर वह भीषण ज्वर शान्त।

निखर उठी थी कान्ति देह पर ललक रहा था तेज अपार,
साधन की अंतिम सीढ़ी पर कर रहा राम था तब संचार,
किया राम ने गंगोत्री से उत्तर काशी को प्रस्थान,
हुई राम की उसी स्थान पर मोघे स्वामी से पहचान।

वहीं योग वासिष्ठ निरन्तर लगा बैठकर पढ़ने राम,
पूर्ण अध्ययन के होते ही लौट पड़ा स्वर्गाश्रम धाम,
हरद्वार में कुंभ स्नान कर हुआ राम जाने तैयार,
अमरनाथ को, तभी अचानक आ पहुँचा माण्डे परिवार।

देखा माण्डे जी ने उसको किए श्वेत धोती परिधान,
विस्तृत दाढ़ी, जटाजूट से तेजपुंज था मुख द्युतिमान,
कहा राम से माण्डे जी ने शिमला चलने अपने साथ,
देख उसे विध का ही इंगित मानी उसने उनकी वात।

रहा राम सिमले में जाकर एक माह तक उनके पास,
छाया माण्डे जी के घर में-हर्ष, शान्ति, सुख का उल्लास,
सन उन्निस सौ अट्ठाइस के माह जुलाई में दिन एक,
अमरनाथ–यात्रा–विज्ञापन किसी एक दैनिक में देख।

लगा राम को जाए यदि वह अमरनाथ को कर प्रस्थान,
निश्चित पथ में पा जाएगा आवश्यक एकाकी स्थान,
रोका माण्डे जी ने उसको वहुत, नहीं पर माना राम,
स्थूल देह के पहले ही मन कूच कर चुका था उस धाम।

पाण्डे जी के कार्यालय में मित्र एक थे दीनानाथ,
गया राम रावलपिण्डो तक गाड़ी से उनके ही साथ,
जाने को श्रीनगर उस समय रावलपिण्डी से थी राह,
किया उन्हीं के घर पर रहकर उसने एक रात निर्वाह।

स्वयं उन्होंने पल्ले से ही दिया राम को टिकट निकाल,
बैठाया ले जाकर बस में भक्ति–भाव से प्रातःकाल,
सन उन्निस सौ अट्ठाइस को चौदह अगस्त को शुभकाल,
पहुँच राम उस रम्य प्रान्त में देख सृष्टि वह हुआ निहाल।

वहाँ नहीं था परिचित कोई कर मुसाफिरों से पहचान,
पूछा उसने उसे बताएँ वे कोई टिकने को स्थान,
कहा किसी ने नारायण मठ रामनाग के हीं है पास,
अमरनाथ जाने वाले सब साधु वहीं करते हैं वास।

पूछताछ करता उस मठ की पैदल पहुँच गया उस स्थान,
कई साधु थे बैठे मठ में वस्त्र गेरुए कर परिधान,
दक्षिण में श्रीनगर शहर के मधुर दुग्ध गंगा के घाट,
नारायण आश्रम है सम्मुख नयन–मनोहर दृश्य विराट।

पूछ साधुओं से पहुँचा वह मठ के महंत जी के पास,
स्वामी ब्रह्मानन्द जहाँ थे बैठे निज शिष्यों के साथ,
साठ साल के सबल साधु को देख राम ने किया प्रणाम,
उत्तर में उसके अधरों पर खेल गई किंचित् मुस्कान।

बड़े रोब से पूछा उसने 'बोलो क्या मुझसे है काम,
'हो तुम कौन, कहाँ–से आए मुझे बताओ अपना नाम'
कहा राम ने 'मुझे चाहिए है इस मठ में कमरा एक'
बिन बोले उपहास भाव से कहा राम को उसने देख।

'मुझें बताएँ सबसे पहले साधु बने हैं क्योंकर आप ?'
'उसी हेतु से आप बने हैं जिससे,' बोला वह चुपचाप,
बड़ी जोर से हँसा साधु वह कहा, कठिन करके उपहास,
'बना साधु मैं मदिरा पीने, रति-सुख पाने, खाने मांस'।

अनुचित साधू के उत्तर से हुआ राम का चित्त उदास,
साधू को फटकार सुनाने योग्य शब्द थे उसके पास,
किन्तु क्षोभ को रोका उसने अपने संयम से तत्काल,
और विनय से कहा 'नहीं थी मुझे अपेक्षा हे मठ–पाल।

भद्र आप सा संन्यासी भी कहे बात ऐसी अश्लील,
मुझे खेद है दिया आपने क्यों ऐसा उत्तर दुःशील'
बोला फिर से साधू हँसकर 'सत्य कही है मैंने बात,
झूठ उसे मत बिल्कुल समझो करो साधु मुझ पर विश्वास।'

हुआ राम आपे से बाहर बोला निज लोचन विस्फार,
'सत्य तुम्हारा अगर कथन तो है निश्चित तुमको धिक्कार,
अच्छा होता यदि इस तन के खण्डित करके शत-शत टूक,
फेंक दिए जाते घूरे पर आकर खाते जिनको कूक।

अगर यही करना था तुमको अनुचित पैशाचिक व्यवहार,
तो रहते अन्याश्रम में, क्यों किया चतुर्थाश्रम स्वीकार ?'
सुनते ही फटकार राम की छोड़ा योगी ने निःश्वास,
फिर हँसकर कह उठा शिष्य से 'भाई यह तो है दुर्वास !

ऋषी श्रेष्ठ, इसको दो कमरा ले जाओ इसको तुम साथ',
लगा राम के कमरा मठ में एक बहुत सुन्दर सा हाथ,
रख सामान स्नान करने को गया उतर नीचे को राम,
करके भोजन दोपहरी में किया तनिक उसने आराम।

चार बजे उठ चला देखने स्थान रम्य, यतियों के साथ,
शंकर-पर्वत, शालिमार, डल, पावन दुर्गा-कुण्ड, निशान्त,

ध्यान, भ्रमण कर सुबह एक दिन मठ में आ बैठा जब राम
पास वहीं लेटे महन्त थे करवाते मालिश अभिराम।

हंस कर बोले 'कहो तुम्हारे मन का होगा कैसा हाल,
औरों को पकवान मिलें यदि तुमको बासी रोटी-दाल ?'
कहा राम ने 'मुझे न होगा यत्किंचित् भी उनसे द्वेष,
किन्तु स्वयं मैं बासी रोटी कभी न खाऊँगा अवशेष।

उससे होगी प्रभु-प्रदत्त यह सबल देह मेरी कमजोर,
खाऊँगा मैं निश्चित वल्कल, पत्ते, रखने तन का जोर,
स्वस्थ देह भी आवश्यक है प्रभु पाने का एक उपाय,
उसे स्वस्थ सात्विक रखने में नहीं बनूँगा मैं निरुपाय'।

पूछा उससे प्रश्न दूसरा उन महन्त जी ने तत्काल,
'सोना, मोती, रत्न, जवाहर, हीरा, पन्ना और प्रवाल,
पड़े तुम्हारे यदि हों सम्मुख और स्थान वह हो सुनसान,
तो सोचोगे तुम क्या मन में बतलाओ मुझको श्रीमान।'

कहा राम ने 'स्पर्श करेगा नहीं राम रत्नों को नेक,
नहीं स्पर्श जैसे हम करते कूटा, मिट्टी सम्मुख देख,
किन्तु बता दूँ एक बात मैं मन की ऐसी स्थिति है आज,
आगे चलकर मनोदशा की कौन बता सकता है बात।'

खाद्य, पेय, संगति, जगती का हममें होता है संवेश,
परिवर्तित इन सबसे होता अन्तर-बाह्य हमारा वेश',
'मानों सुन्दर, तरुण, कामिनी नग्न खड़ी हो जाए पास,
तो मन की स्थिति कैसी होगी ?' पूछा उसने भर निःश्वास।

कहा राम ने उचित यही है करें न मुझसे यदि यह प्रश्न,
शायद मन चंचल हो जाए काम-भाव भी हो उत्पन्न,
किन्तु मुझे है अपने मन की दृढ़ता पर पूरा विश्वास,
राम रहेगा निर्विकार ही, नहीं जायेगा उसके पास।

झूठ नहीं पर यह भी सच है छलता है सब जग को काम,
उस पर अब भी पूर्ण रूप से हुआ न विजयी है यह राम,
किन्तु यत्न कर रहा राम है उस पर जय पाने अविराम,
निश्चय ही उसके प्रयत्न को सफल करेंगे प्रभु श्रीराम।

एक बात पर यह भी सच है जो भी होने को बलवान,
किए प्रयत्न थे मैंने सारे बदल गए हैं वे द्रुतिमान,
नहीं बोलना, नहीं ताकना, महिलाओं से रहना दूर,
काम विजय के सभी पुराने ये मत हैं भ्रामक भरपूर।

कामोत्तेजक बातों से इन केवल भय होता उत्पन्न,
मन में भय के होते कैसे होंगे हम बल से सम्पन्न,
अतः जरूरी नहीं उपेक्षा करें नारियों की हम जान,
प्रभु रूप वे भी हैं निश्चित क्यों न इसे ही हम लें मान।

भेद-हीन प्रभु रूप मान हम रखकर निज सात्विक आहार,
शुद्ध भाव से कपट-हीन, यदि करें अभय उनसे व्यवहार,
तो निश्चित हम हो जाएँगे कालान्तर में अति बलवान,
नहीं काम कर सकता हम पर सपने में भी तव संधान।

इस प्रयत्न में सम्भव है हम ठोकर खा जाएँ दो-चार,
किन्तु ध्येय पर टिके रहें हम नहीं कभी हम मानें हार,
तो निश्चित हम विजयी होंगे शुद्ध बनेंगे सभी विकार,
विजयी हरदम वे ही होते जो न बैठते हिम्मत हार।

इतना सुनते ही महंत के झलक उठा मुख पर संतोष,
हुआ राम से वर्तन उनका कोमल तब से रहा न रोष,
चला दूसरे दिन वह मठ से और साधुओं के हो संग,
अमरनाथ का दर्शन करने छड़ी-गमन का देख प्रसंग।

उठा लिया कन्धों पर अपना सबने निज सामान सम्भाल,
नदी विवस्ता पाँवपूर वे पहुँचे अगली प्रातःकाल,
निकट एक था वहाँ शिवालय और धर्मशाला थी पास,
उसी धर्मशाला में जाकर काटी सबने मिल कर रात।

और दूसरे दिन वे पहुँचे पैदल गाँव अवन्तीपूर,
आँचल में श्रीनगर शहर के बीस मील के लगभग दूर,
चले वहाँ से 'बीज विहारा' होकर वे सब अनन्त नाग,
पाँच मील था दूर जहाँ से तत्ते पानी का गिरि-भाग।

तत्पश्चात् मटनला जाकर किया धर्मशाला में वास,
वहीं सिद्ध मौनी बाबा भी करते थे उस काल निवास,
वहीं एक दिन अनायास ही आए संन्यासी जी एक,
थे महन्त जी के परिचित वे हुए राम को क्रोधित देख, ।

जटाजूट दाढ़ी से शोभित जटिल राम का रूप विलोक,
लगा उन्हें वह भी कोई है साधु वेश में याचक, चोर,
वे सब मिलकर आपस में ही करने लगे सहज शास्त्रार्थ,
कहता कोई भाग्य सबल है और अन्य कहता पुरुषार्थ ।

चर्चा वह सुन रहा राम था बैठ वहीं पर होकर मौन,
पूछा संन्यासी ने उससे "श्रेष्ठ बताओ तुम हो कौन ?"
कहा राम ने "आप सरीखे यति की साम्य-बुद्धि है धन्य,
आप ब्रह्मज्ञानी के सम्मुख ब्रह्म-भाव बिन तत्व न अन्य ।

कहाँ आप जैसा ज्ञानी यति ब्रह्मरूप, मर्मज्ञ, सुजान,
और कहाँ दाढ़ीवाला यह बकरा पशु भारी अज्ञान !"
कहा अतिथि ने लज्जित होकर 'क्षमा करो मुझको श्रीमान,
भूल हुई, पर मुझे न भाता जटा-दाढ़ि का यह संघान ।'

हँसा राम, बोला 'इसमें है नहीं आपका कुछ भी दोष,
बिन पुरुषार्थ बढ़ी दाढ़ी है निश्चित मेरी सकल सदोष,
सुन पुरुषार्थ प्रशंसा की वह बात, हुआ लज्जित वह और,
बोला 'अपराधी हूँ मुझको पानी-पानी करो न और ।

एक प्रार्थना पर छोटी सी क्यों न करो तुम भी स्वीकार,
पहले कटवा दो दाढ़ी यह और जटा मस्तक का भार',
सुनकर बात अतिथि की बोला भरकर शब्दों में मुसकान,
'होगा क्या पुरुषार्थ तुम्हारा इसमें ही साबित श्रीमान ?

करना यदि पुरुषार्थ सिद्ध हो तो आवश्यक निःसन्देह,
पहले कोई साधन पाकर पार करें हम तीनों देह,
पंचकोश में पैठ प्रकृति का काट आवरण हम अवशेष,
दर्शन प्रभु का कर पाएँ हम आत्म रूप होकर निःशेष ।

किन्तु आप तो दाढ़ी का भी नहीं काट पाते हैं जाल,
पंचकोष वा देह त्रयी का बोलें फिर होगा क्या हाल ?'
कहा राम ने 'मेरे मत में है प्रारब्ध और पुरुषार्थ,
दोनों ही समबल होने के कारण हैं दोनों ही सार्थ ।

ये दोनों ही कर्मरूप हैं एक पिता की ही संतान,
लगते यद्यपि भिन्न तत्व दो पर दोनों हैं एक समान,
आज भाग्य जो बन बैठा है कभी रहा था वह पुरुषार्थ,
और आज का कर्म हमारा होगा भावी का मति-तार्थ ।
गत संस्कारों के बल पर ही हम जो भी करते हैं कर्म,
पुरुषार्थ मानकर उसी कर्म को मानव का कहते हैं धर्म,
सच्चा है पुरुषार्थ वही पर गत संस्कारों के हम साथ,
करें प्राप्त, आनन्द, संघटन, निर्भयता प्रभुरूप स्वजात ।'
हुआ राम की व्याख्या सुनकर संन्यासी जी को आनन्द,
दाढी मुँड़वाने की इच्छा पड़ी न उनकी फिर भी मंद,
दाढ़ी मुँड़वाने को कहकर गए वहाँ से अमितानन्द,
कहा राम ने 'कटवा दो यदि होता हो तुमको आनन्द ।'
सुबह दूसरे दिन आ पहुँचे लिए एक नाई को साथ,
जटाजूट अदृश्य हुआ बस लगी राम के चुटिया हाथ,
पहलगाँव था अभी वहाँ से ऊँचाई पर काफी दूर,
चल पड़े दूसरे ही दिन वे सब ठहर रात को गणेशपूर ।
छड़ी निकलने के पहले ही हुई बड़ी वर्षा घनघोर,
हुआ पंकमय सारा ही पथ ठण्डक ने नव पकड़ा जोर,
छोड़ साथ यात्रा का सत्वर चला राम पगडण्डी राह,
जा पहुँचा गिरता-पड़ता वह चंदनवाड़ी, भाग्य सराह ।
गिर-गिर कर चलते रहने से हुए कीचमय सारे वस्त्र,
नदी रुद्रवंती पर पहुँचा वह कीचड़ से होकर त्रस्त,
किया राम ने स्नान नदी में धोकर फैलाए निज वस्त्र,
तभी वहाँ पर यात्रा पहुँची उठती-गिरती अस्ताव्यस्त ।
वही लंगोटा बाँध वृक्ष के नीचे जाकर बैठा राम,
लोग शीत से ठिठुर रहे थे रुकी न थी वर्षा अविराम,
लगे शाम को सात बजे के लगभग तम्बू कुछ धर्मार्थ,
भोजन कर बैठा तम्बू में साथ साथियों के हो आर्त्त ।
अब भी वर्षा धुआँधार थी जरा न था रुकने का चिह्न,
ईंधन था पर जंगली काफी करने ठण्डन को अविछिन्न,
अभी वहाँ से यात्रा को थी पिस्सू घाटी करना पार,
कठिन चढ़ाई सोच रात भर चिन्तित थे सब लोग अपार ।

इसी बात की चिन्ता में वह कटी रात सबकी ही जाग,
कैसे कोई सो भी सकता जब वह सब था गीला भूभाग,
बिछी चटाई भी थी गीली तम्बू से चूती थी धार,
पड़ा राम था गीले में ही वहीं सिकुड़ कूर्मासन मार।

इस आसन में सभी देह के अवयव हो जाते एकत्र,
जिससे तन में आ जाती है सहज उष्णता सी सर्वत्र,
बिन सोए ही सुवह छह बजे संग साथियों के उठ राम,
चला चढ़ाई चढ़ने अब भी वृष्टि हो रही थी अविराम।

कड़क रही थी भीषण बिजली काँप रहा था जन समुदाय,
गिर-उठ चलता ही जाता था फिर भी वह आगे निरुपाय,
मार्ग तंग था रपटन भी थी रुक जाती थी राह तुरन्त,
अश्व एक भी गिर जाता यदि पथ में फिसलन से अत्यन्त।

बढ़ते ही जाते थे यात्री किसी सैन्य सा रखकर होश,
हिम्मत रखने बीच-बीच में अमरनाथ का कर जयघोष,
कई यात्रियों ने पथ में ही अमरनाथ का लेकर नाम,
कठिन राह के कष्टों से ही विवश खो दिए अपने प्राण।

पथ में रुकने का आ जाता यदि कोई भी कभी प्रसंग,
बुरा राम को रुकना लगता आगे वह बढ़ता निःसंग,
ढूँढ निकट की राह राम था चढ़ता जाता सोटी थाम,
कहा कई लोगों ने ऐसा करे न वह खतरे का काम।

चढ़ता ही वह गया निरन्तर बिना किए उनकी परवाह,
इसी भाँति तय कर ली उसने पिस्सू घाटी की वह राह,
पिस्सू घाटी चढ़कर देखा जब उसने पीछे की ओर,
हुई दुर्दशा थी लोगों की सुना राम ने होता शोर।

फिर भी यात्री बढ़े आ रहे थे आगे बिन हिम्मत हार,
बिना बिलखने वालों की सुन सकरुण उरद्रावक चीत्कार,
जोजपाल वह जा पहुँचा कर पिस्सू घाटी से प्रस्थान,
नदी रुद्रवंती के तट था जहाँ एक छोटा मैदान।

भूख लगी थी उसको भीषण नहीं खाद्य था कुछ भी पास,
नहीं वहाँ भी दिखा उसे कुछ छोड़ उगी तट पर की घास,
गया रुद्रवन्ती के तट पर पानी पीने को जब राम,
[illegible]र पत्ते तट से ले लगा चबाने वह सुख मान।

पत्ते खाकर पीया उसने पानी सरिता का भर पेट,
जगी अचानक उसके तन में जिससे गर्मी सी घन एक,
विकट शीत का शेष रहा था अब उस पर कुछ भी न प्रभाव,
नई शक्ति से किया वायु जन का तय उसने दीर्घ चढ़ाव।

शायद हो उस पत्ती का ही उष्ण बना देना परिणाम,
तन पर था गीला कुर्ता पर उसे न था सर्दी का भान,
तनिक वायु जन से है हटकर थोड़ा सा दक्षिण की ओर,
तीन पर्वतों से वेष्टित हो शेषनाग के सर का रोर।

शेषनाग ही रुद्रावन्ती का निर्मल है उद्‌गम स्रोत,
पहलगाँव की ओर जहाँ से जाती वह इठलाती ओत,
लौट वायुजन जब आया वह शेष सरोवर में कर स्नान,
वहाँ नहीं था पहुँचा कोई सारा ही स्थल था सुनसान,।

देख सामने हलवाई की उसी काल खुलती दूकान,
लगा राम को कुछ ले ले वह विकट क्षुधा से पाने त्राण,
किन्तु खरीदे कैसे वह जब था न एक भी पैसा पास,
कहा राम ने अपने मन से, "पगले नाहक हो न उदास।

क्या न अभी कुछ ही क्षण पहले नहीं ग्रहण की तूने घास,
हरी-भरी इस प्रकृति सुन्दरी माता का वात्सल्य प्रसाद?,
इतने में आ पहुँचे उस स्थल और लोग भी चलकर भ्रान्त,
कठिन शीत से, अपघातों से जर्जर ठिठुरे दुःखाक्रान्त।

देख अगर कोई भी लेता किसी धनिक की जलती आग,
जान बचाने अपनी बेबस वहीं पहुँच जाता था भाग,
धनिक लोग पर उनको देते थे निष्ठुरता से दुत्कार,
किन्तु श्वान से मँडराते वे वहीं लौट आते हर बार।

कुत्सित वह सब दृश्य दूर से देख, राम हो उठा उदास,
गया वहाँ पर शिला जहाँ थी एक बड़ी-सी बिल्कुल पास,
शिला उठी सी थी कुछ ऊपर नीचे था थोड़ा सा स्थान,
वहीं राम सत्वर जा बैठा मुक्त वृष्टि से वह स्थल जान।

भिन्न राम की वृत्ति देखकर व्यक्ति एक पहुँचा धनवान,
निकट राम के, सादर उसको करने सब्जी पूरी दान,
क्षुधाक्रान्त था राम स्वयं भी किया खद्यउसने स्वीकार,
धन्यवाद देकर ईश्वर को और व्यक्ति को उस, साभार।

उस सज्जन ने कहा राम से गीला कुर्ता तन पर देख,
'बर्फानी यह शीत रुकेगी कैसे कपड़े से इस एक ?',
कहा राम ने मेरे प्रभु हैं निश्चित करुणा के आगार,
सहायता मानव की करते वे ही छिपकर वारम्वार ।

उसी शक्ति की स्मृति का यदि हो मन में नन्हा सा अंगार,
प्रलय-शीत भी गर्मायी का हममें कर देगी संचार,
वनी राम की सभी उँगलियाँ निश्चित थीं सर्दी से काठ,
किन्तु हृदय में धधक रही थी तेजस प्रतिक्षण अग्नि विराट ।

चला गया वह सज्जन अपने तम्बू में करने आराम,
बैठा उसी शिला के नीचे रहा राम भजता प्रभु नाम,
धीरे-धीरे लगा फैलने अन्धकार था चारों ओर,
राम साथियों का अब भी था कहीं न कुछ भी पता, न ठौर ।

वह मैदान वना था अव तो शहर तम्वुओं का सा एक,
उस वस्तीं में हो आया वह कई वार उन सबको देख,
गया जहाँ भी वहीं सुन पड़ा रोने-चिल्लाने का शब्द,
प्रातःकाल हुए वस्ती से कई जनों के शव उपलब्ध ।

कई दिनों से लगातार ही वर्षा थी हो रही अखण्ड,
बीच-बीच में धुनी रुई से गिरने लगते थे हिम खण्ड,
इन सबसे था अधिक भयानक विकट वहाँ का वायु प्रवाह,
हुआ इसी कारण उस स्थल का नाम 'वायुजिन' से निर्वाह ।

रात और भी एक कटी पर सुबह मिला सबको सन्देश,
'नहीं बढ़े आगे कोई भी' दिया पुलिस ने था आदेश,
देख नियति का कोप भयंकर और मृत्यु का ताण्डव नृत्य,
शेष नहीं था मार्ग और कुछ एक लौटने के अतिरिक्त ।

नहीं राम की इच्छा थी वह लौटे, लेकिन था न उपाय,
चलना पड़ा सभी को पीछे आज्ञा से होकर निरुपाय,
जो भी गिर पड़ता था पथ में वहीं विवश हो जाता ढेर,
समय कहाँ था वहाँ किसी को जो रुक सुनता उसकी टेर ।

लेकिन यात्रा में लोभी थे साधू ऐसे भी दिलदार,
लौट मृतों का सब धन, जेवर लाए जो चुपचाप उतार,
नहीं लगा उनका वे भी तो कभी काल का होंगे ग्रास,
किन्तु मोहवश करता मानव अपने ही हाथों निज हास ।

चन्दनवाड़ी पहुँचे वे सब उसी रात को हो बेहाल,
चले वहाँ से पहलगाँव वे सब अगले दिन प्रातःकाल,
रुद्रावन्ती का उस पथ में करना पड़ता था पुल पार,
लाँघ नदी को लगा देखने पीछे वह उस पुल के पार।

उन्हीं लुटेरों में से साधू एक, कर रहा था पुल पार,
तभी अचानक आई भीषण पुल पर सरिता की जलधार,
रुद्रावन्ती की धारा का रौद्र रूप बन गया प्रवाह,
निगल लिया उसने उस पुल को तत्क्षण निष्ठुरता से आह!

उसी साधु के साथ और भी जल-समाधि में हुए निमग्न,
देख रहा था राम विवश हो न्याय सृष्टि का निर्मम, नग्न,
चन्दनवाड़ी और वायुजिन दोनों के पथ में सुनसान,
कई लोग पथ-बाधाओं से खो बैठे थे अपने प्राण।

बड़ी कठिनता से पहुँचा वह पहलगाँव मित्रों के संग,
किन्तु वहाँ के पुल दोनों ही पड़े हुए थे होकर भंग,
टूट पुलों के जाने से था यातायात बसों का बन्द,
कहा राम ने मित्रों से क्यों खोज न लें वे पथ स्वच्छन्द।

करके पार कई पर्वत वे काट आपदाएँ भरपूर।
टेढ़े-मेढ़े पथ से पहुँचे आखिर वे सब गणेशपूर,
पहुँच वहाँ पर काटी सबने एक विप्र के घर पर रात,
ज्वर जुकाम ने किया अचानक पथ में मित्रों पर संघात।

धीरे-धीरे रुकते-चलते पहुँचे वे सब अनंत नाग,
किन्तु साथियों पर छाया था बीमारी का नव अनुराग,
अस्पताल में उन्हें छोड़कर कर सेवा का सभी प्रबन्ध,
लगा राम श्रीनगर लौटने पैदल पथ में खाता कन्द।

एक बात का उसको होता बार-बार आश्चर्य अपार,
बिना वस्त्र, खाने के, कैसे गए न उसके प्राण सिधार,
बल्कि स्वास्थ्य में पाता था वह पहले से भी अधिक सुधार,
इसी बात से लगे उभरने उसके मन में पूर्व विचार।

घास मुष्ठिका भर खाने का आया उसके याद प्रसंग,
लगा उसे उस बूटी से ही हृष्ट-पुष्ट है उसका अंग,
उस बूटी का शोध लगाने लगा छानने जंगल राम,
व्यर्थ गया पर वह श्रम सारा मिली न वह बूटी उस धाम।

लगा राम को यदि वह रक्खे प्रभु पर ही पूरा विश्वास,
और करें व्यवहार सभी हम प्रभु का अनुभव कर सहवास,
तो वह करुणामय भी रखता निज भक्तों का पूरा ध्यान,
सहज आपदाएँ हरता है भक्तों की छिपकर भगवान।

अनंतनाग से बीज बिहारा होकर पहुँचा गेरू गाँव,
थे रहते कुछ विप्र वहाँ पर थके राम के थे अब पाँव,
चढ़ आया था सूरज सिर पर लगी जोर की उसको भूख,
किन्तु माँगना उसे न भाया रहा वहीं फिरता, वन मूक।

तभी राम ने देखा छज्जे पर बैठी थी वृद्धा एक,
कात रही थी सूत, पुकारा निकट राम को जाते देख,
नहीं राम समझा वह बोली समझा पर उसका अभिप्राय,
भोजन करने बता रही थी शीघ्र स्नान कर वह आ जाय।

घर का बालक उसे ले गया करवाने झरने पर स्नान,
जहाँ एक छोटा आश्रम था शिव-मंदिर भी था उस स्थान,
तभी ब्रह्मचारी ने देखा मंदिर के, बिन किए प्रणाम,
राम उसे, आनन्दित होकर जा बैठा था करने स्नान।

कर न सका यह सहन उपेक्षा हुआ राम पर वह नाराज,
आया झरने पर वह सत्वर किए क्रोध का पूरा साज,
'ब्रह्मचारी हो ?' पूछा उसने आँखों को अपनी विस्फार,
'जो भी मुझको आप समझते वही' कहा उसने ललकार।

ब्रह्मचर्य के अचारों का नहीं तुम्हें यत्किंचित् ज्ञान,
कहा राम ने देह पोंछते भरकर शब्दों में मुस्कान,
बस यथेष्ठ ब्रह्मचारिणाम् इसे बताती मनुस्मृति धर्म,
क्षमा करें हूँ भूखा मुझको अभी सूझता अन्य न कर्म।

हुआ ब्रह्मचारी लज्जित पर पूछा उसने रख औसान,
सन्ध्या भी आती है तुमको या हो उससे भी अनजान,
कहा राम ने अभी मुझे है केवल भोजन का ही ज्ञान,
उदर-पूर्ति करके आऊँगा पास आपके मैं श्रीमान।

हुआ राम उस वृद्धा के घर भोजन पाकर जब सन्तुष्ट,
गया ब्रह्मचारी के आश्रम अब न ब्रह्मचारी था रुष्ट,
कहा ब्रह्मचारी ने लाकर चेहरे पर किंचित् मुस्कान,
और दृगों में अपने भरकर अखिल सृष्टि का सारा ज्ञान।

ब्रह्मचारी को आवश्यक है किया करे वह संध्या रोज,
अगर न आती हो संध्या तो सीखो मुझसे निःसंकोच,
इतना कहकर 'नित्य कर्मविधि' पुस्तक रख दी सम्मुख एक,
कहा राम ने 'आप पढ़ाएँ मंत्र एक-दो, पुस्तक देख।

पढ़े ब्रह्मचारी जी ने तब मंत्र पुस्तिका से दो चार,
लगा राम उनके ही पीछे करने मंत्रों का उच्चार,
तभी ब्रह्मचारी से उसने एक मंत्र का पूछा अर्थ,
खीझ उठा वह मानो उससे पूछ अर्थ था किया अनर्थ।

बोला ब्रह्मचारी खिसियाकर किया अभी पढ़ना आरम्भ,
और अर्थ का ज्ञान चाहते हो तुम अभी हाल अविलम्ब,
नित्य नेम से कई माह तक किया करोगे जब तुम पाठ,
तव जाकर तुम समझ सकोगे इन मंत्रों का अर्थ विराट।

कहा राम ने अर्थ ससझने में ही यदि लग जाते माह,
तब तो निश्चित जन्म लगेंगे कई सीखने संध्या आह !
इसी समय आ गए राम के पहले के दो परिचित विप्र,
लगी ब्रह्मचारी की बातें उन दोनों को बड़ी विचित्र।

कहा उन्होंने ब्रह्मचारि से पड़ें न इस झंझट में आप,
व्यक्ति छिपा रुस्तम है यह जो बैठा अबोध सा चुपचाप,
आप सरीखे कई जनों को कर सकता यह विद्यादान,
नहीं भूलकर समझो इसको अनपढ़ सा मानव नादान।

उड़ा द्विजों की की बातें सुनकर ब्रह्मचारि के मुँह का रंग,
लगा देखने निर्निमेष वह होकर विकल राम को दंग,
बना राम का मित्र हितैषी अब की उनसे हँस कर बात,
बार-बार उसके कहने पर वहीं राम ने काटी रात।

चला वहाँ से राम श्रीनगर बस से अगली प्रातःकाल,
दिया एक ने भाड़ा उसको हो उस पर अत्यन्त निहाल,
जाते ही नारायण मठ में मिला राम को सुन्दर स्थान,
चाह रहा था शीतकाल वह वहीं कहीं काटे सुनसान।

इसी बीच श्रीनगर मुज्जू का हुआ राम को परिचय प्राप्त,
कहा राम से घर रहने को समझ उसे अपना ही आप्त,
मुज्जू जी को लगा राम ही शिवजी का है सत्य स्वरूप,
श्रद्धा से सेवा की उसने उसी भाव के ही अनुरूप।

उनके ही घर रहकर काटा शीतकाल उसने उस साल,
बीच-बीच में नारायण मठ भी जाया करता उस काल,
एक फरवरी उन्तीस को ध्यान लगाने बैठा राम,
किया यत्न बहुतेरा लेकिन लगा न किंचित् भी उस शाम ।

घिर आया मानस पर उसके घनीभूत बादल साकार,
हुई प्रवाहित उसकी आँखों से आँसू की अविरल धार,
त्रिपुर सुन्दरी जगज्जीवनी माता ने जब सुनी पुकार,
निज आँचल से अश्रु पोंछने किया वहाँ उसने संचार

अपने कर कमलों से उसने लिया राम का सिर निज गोद,
सौरभमय निज दिव्य कांति से भरा राम में मधुमय मोद,
सहला कर हाथों से मस्तक मधुर गान की करके सृष्टि,
दिया दिव्य आनन्द राम की आँखों पर स्थिर कर निज दृष्टि ।

राम उसी आनन्द-सिन्धु में अब भी था कर रहा विहार,
तभी वहाँ 'भूचाल हो रहा' आ मुज्जू जी उठे पुकार,
शास्त्र प्रचीती अपना अनुभव और साथ ही गुरु प्रसाद,
ये ही कसौटियाँ तीनों हैं आत्म सत्य की करने जाँच ।

योग साधना पूर्ण हुई थी गुरु कृपा थी उसको प्राप्त,
पर शास्त्रों से निज अनुभव की तुलना करनी थी पर्याप्त,
अतः राम ने पढ़े उपनिषद और लिंग वा शैव-पुराण,
छानबीन कर इन ग्रन्थों से लिया आत्म अनुभव पहचान ।

गुल्बनपुर को छोड़ राम तब पहुँच गया शूलीपुर ग्राम,
जहाँ कौल जी के ही घर पर ठहरा वह करने विश्राम,
यहीं बाल जी कौल युवक से हुई राम की पहली भेंट,
लगा राम की सेवा करने निज उर का सब स्नेह समेट ।

बर्फानी उस ठण्डक में भी सात्विक था उसका आहार,
हिम आच्छादित देख सृष्टि को हुआ न वह बिल्कुल लाचार,
रोज बर्फ को तोड़ हटाकर झरनों से वह करता स्नान,
और बर्फ से ढँकी श्रेणियों पर फिरता रहता सुनसान ।

पढ़ा राम ने था आत्मा को नित्य बताता है वेदान्त,
तदनुसार ही हम भी करते अविनाशी आत्मा की बात,
स्वानुभूत पर नहीं हमारा होता तत्सम्बन्धी ज्ञान,
प्रतिपादित शास्त्रों को करते घर बैठे हम सब अनजान ।

हो सकता है शब्द ज्ञान हो निज अनुभव से बिल्कुल भिन्न,
सत्य वही है जो न कभी भी होता दोनों से अविच्छिन्न.
वेद वाक्य का सत्य परखने जाया करता था वह दूर,
बीहड़ जंगल में अजमाने निर्भयता अपनी भरपूर।
हो सकता है बस्ती में हम नीडर रहते हों नितान्त,
उसी तरह निर्भय जंगल में भी न विचर सकते क्यों शान्त,
व्यग्र कभी हों यदि हम निश्चित पाने आत्मानन्द अखण्ड,
तो जनरव से दूर प्रकृति का हमें चाहिए करना संग।
लगा राम को अच्छे यति भी अपने व्यसनों से मजबूर,
नहीं छोड़ बस्ती जा पाते एकाकी जंगल से दूर,
व्यसन नहीं था उसको निश्चित किन्तु न था उसको संतोष,
सोच क्षुधा की बात निरन्तर होता था उसको विक्षोभ।
उन्निस सौ उनतिस ईस्वी में जून माह की थी वह बात,
कूलगाँव में पहुँच राम ने वहीं एक दिन काटी रात,
यहीं अचानक मिले राम को कानंगू पंडित जी भक्त,
कर प्रणाम उसको श्रद्धा से हुए राम पर वे अनुरक्त।
गए राम को ले अपने घर हुआ वहाँ काफी सत्संग,
भाग्य, देवता, उन्नति, आत्मा चर्चा के यह सब थे अंग,
वहीं किसी ने कहा राम से गोदावरि झरना है पास,
दूर-दूर से लोग वहाँ की यात्रा करते हैं सोल्लास।
उसी जलाशय के पथ में है नीचे को थोड़ी ही दूर,
नयन मनोहर आबादी जो कहलाती है गाँव 'गुद्दूर',
आसपास बीहड़ जंगल है जहाँ विचरते पशु खूँखार,
'पर न वहाँ जाने की सोचें आप भूलकर भी बेकार।'
कहा राम से पण्डित जी ने स्नेह भाव से अपना जान,
किन्तु राम की मिटी न उससे उत्सुकता उत्कट अनजान,
लगा देखने खिड़की से ही निर्निमेष वह वन्य प्रदेश,
नयन मनोहर नियति नटी के मुख पर अरुणायित आवेश।
किया प्रकृति ने इङ्गित से ही उसको आने का आह्वान,
हुआ मुदित वह लेकिन कोई सका न यह संवेदन जान,
उठकर प्रातःकाल दूसरी चला राम जंगल की ओर,
नाला था कुछ दूर मध्यकुल-गाँव और जंगल में घोर।

उसी स्थान से कुछ अन्तर पर पर्वत पर ऊपर नितान्त,
एक जलाशय ठीक पैर सा मानव के था प्रस्तुत, शान्त,
रम्य जलाशय वही सजग था उस नाले का उद्‌गम स्थान,
इसीलिए वह कहलाता था विष्णूनाला तीर्थ महान।

इसी विष्णुधारा के जल में किया राम ने प्रातः स्नान,
भोजन करके, गुदर गाँव की ओर किया उसने प्रस्थान,
पहुँच शाम को गुदर गाँव में काट वहीं रजनी अवशेष,
चला देखने सुबह राम वह गोदा का आरण्य–प्रदेश।

स्थान-स्थान पर देखा उसने पशुओं को जाते खूँखार,
किन्तु किसी ने किया न उन पर हमला करने का कुविचार,
थामे था वह सोटी कर में पास न था कोई हथियार,
निर्भयता से किन्तु गया वह जंगल में करता संचार।

जंगल था अत्यन्त सघन वह नहीं जहाँ था सूर्य प्रकाश,
नहीं पवन भी पा सकता था अन्दर जाने को अवकाश,
बड़े यत्न से राह खोजता पहुँचा वह झरने के पास,
चौड़ा था फुट तीस स्रोत वह लम्बा फुट चालीस–पचास।

झरने के चहुँ ओर शिलाओं का पक्का था सुन्दर घाट,
भीतर-बाहर थी एकत्रित तृण-पत्तों की राशि विराट,
निकट जलाशय के ही उसने साफ किया थोड़ा सा स्थान,
बना बीच में गड्ढा रक्खे उसमें सूखे पत्ते जान।

ऊपर पत्तों शाखाओं का बना लिया छोटा सा छत्र,
आसन था तैयार नहीं अब आवश्यक जाना अन्यत्र,
कूलगाँव से ले आया था आधा सेर चने वह साथ,
बाँध पोटली में दाने सौ पानी में रख देता दाब।

पाँच-पाँच करके भींगे वे चने चबा लेता था राम,
ऊपर से पानी पीकर वह भजता रहता था हरिनाम,
घण्टों तक वह वहीं बैठकर जपता रहता था ओंकार,
नित्य उपनिषद् गीता पढ़ना था उसका दैनिक आचार।

जंगली पशु आया करते थे उसी जलाशय पर विक्राल,
प्यासे होकर पानी पीने रोज रात वा प्रातःकाल,
देख भेड़िए भालू सम्मुख हुआ न वह बिल्कुल भयभीत,
किया न पशुओं ने भी हमला देख उसे निर्भय आसीन।

एक जटाधारी आ पहुँचा एक दिवस झरने के पास;
राम वहीं रहता है सुनकर हुआ नहीं उसको विश्वास,
पूछा उसने 'यदि यह सच तो करते तुम कैसे निर्वाह,
अथवा अपने उदर पूर्ति की नहीं तुम्हें कुछ भी पर्वाह ?'
कहा राम ने चने पास हैं थोड़े से मेरे श्रीमान,
उन ही पर निर्वाह राम यह नित कर लेता है सुख मान,
पर यदि भिक्षा चाहें तो है गुदरगाँव थोड़ी ही दूर,
आप खुशी से जा सकते हैं भोजन पाने को भरपूर।
हुआ अतिथि को नहीं राम की बातों पर बिल्कुल विश्वास,
कैसे कोई जी सकता है यदि न अन्न हो उसके पास,
रखकर अपना कम्बल नीचे हुआ वहीं साधू आसीन,
लगा जलाने धुनी सामने जंगल की कुछ लकड़ी बीन।
लिया साधु ने राम संग ही उन्हीं चनों का अल्पाहार,
और रात को वहीं सो गया कम्बल उसके पास पसार,
अभी रात थी थोड़ी बाकी अन्धकार छाया था घोर,
चमक रहे थे नभ में तारे शेष समय था होने भोर।
सिद्धासन पर वहीं राम था बैठ गया होकर ध्यानस्थ,
और पेड़ के तले साधु था लघुशंका करने में मस्त,
अँधियारे में तने पेड़ के और किसी भालू का अंग,
एक रूप लगते होने से काला दोनों का ही रंग।
लिपट तने से उसी पेड़ के भालू सोया था उस स्थान,
उष्णधार साधू की बरसी अकस्मात उस पर अनजान,
पड़ते ही जलधार देह पर झपटा वह उस पर खूँखार,
'शामसिंह ! ओ, शामसिंह' की सुनी राम ने आर्द्र पुकार।
रखकर सिर पर पैर साधु था दौड़ रहा होकर भयभीत,
उसके पीछे-पीछे क्रोधित भाग रहा था हिंसक रीछ,
देखा उसने साधु आ रहा था दौड़ा उसकी ही ओर,
'शामसिंह ! ओ, शामसिंह' का रह-रहकर करता रव घोर।
जैसे ही वह उठकर आया हुआ रीछ सहसा अदृश्य,
काँप रहा था साधू थर-थर मूर्तिमान भय सा सादृश्य,
कहा राम ने 'मुझे बताएँ किसे आप थे रहे पुकार ?
किसको सम्बोधित करते थे 'शामसिंह' का कर उच्चार ?'

कहा साधु ने तनिक भाव से 'सूझ रहा तुमको उपहास,
प्रकट मृत्यु सा आ पहुँचा था शार्मसिंह ही मेरे पास',
कहा राम ने चकित भाव से 'यह क्या कहते हो श्रीमान,
शार्मसिंह के दर्शन से तो जड़ भी हो जाता गतिवान'।

कहा साधु ने 'पशुओं में है शार्मसिंह वह जीव विशेष,
जिसका नामोच्चारण करना भी है प्रातःकाल निषेध',
रहा न साधू उस जंगल में एक घड़ी भी उसके बाद,
आया राम पहुँचाने उसको जंगल की सीमा तक साथ।

किया राम ने उसी जलाशय पर थोड़े दिन और निवास,
तत्पश्चात मरीचि ऋषि के झरने पर जा पहुँचा पास,
किया वहाँ पर ऋषि भट्ट ने श्रद्धा से उसका सत्कार,
और वहीं पर प्रथम कुटी भी करवा दी उसकी तैयार।

अभी झोपड़ी बनी न पूरी थी जब आया एक फकीर,
देख कुटी को वहाँ उभरते तत्क्षण वह हो उठा अधीर,
मनमानी बक कई गालियाँ दिया सजग उसने अभिशाप,
बन पाएगी यहाँ न कुटि यह व्यर्थ परिश्रम करें न आप।

हुए भट्ट के साथ श्रमिक भी आकुल सुनकर उसकी बात,
रुका काम कुटिया छाने का भावी की चिन्ता में भ्रान्त,
धारण करते थे जो साधू पागल बैरागी का वेश,
लोग डरा करते थे भोले पहुँचा उनको समझ विशेष।

लोगों को निर्भय, आनन्दी आत्मनिष्ठ, करना तो दूर,
उन्हें बना देते वे ढोंगी, स्वार्थी और पतित भरपूर,
ऐसे ढोंगी साधू अपना तो कर लेते ही हैं नाश,
लेकिन जनता और राष्ट्र का भी करते हैं सत्यानाश।

अतः राम ने ऋषि भट्ट से कहाँ आप करते हैं भूल,
भय से चुप हो बैठे रहना नहीं धर्म के है अनुकूल,
भय ही सबसे बड़ा पाप है सब धर्मों में एक अधर्म,
उचित नहीं है हमें मृत्यु के भय से हम तज दें निष्कर्म।

धर्म बताता अजर अमर है आत्मा अविनाशी सर्वत्र,
नहीं नाश कर सकती उसका शक्ति सृष्टि की या अन्यत्र,
पढ़ते है हम तत्व-निरूपण यही धर्मग्रन्थों में नित्य,
पर इससे ही धर्मनिष्ठ हम कभी न बन सकते यह सत्य।

निर्भयता, संगठन, प्रेममय हो न हमारा यदि व्यवहार,
छोटी बातों में भी यदि हम देख न पाएं प्रभु साकार,
तब तक हम सब केवल ढोंगी स्वार्थी कपटी हैं नितान्त,
और धर्म से विमुख सर्वथा होकर विचरा करते भ्रान्त।

हुआ राम के भाषण का उन सब लोगों पर इष्ट प्रभाव,
किन्तु अभी भी अन्तर्मन में मिटा नहीं था भय का भाव,
कहा भट्ट ने श्रमिकों से वे करें काम अपना आरम्भ,
किन्तु साथ ही कहा राम से घबरा कर उसने अविलम्ब।

'महाराज वह नहीं रहेगा बिना किए कोई उत्पात,
रात आज की यहाँ न ठहरें आप मान लें मेरी बात'
कहा राम ने बस इतना ही लो हो जाता अभी उपाय,
उस फकीर के भय से ऐसे आप न हो जाएं असहाय।

सिद्धासन पर बैठ वहीं पर करके मन मैं धारण भाव,
मानो भाग रहा हो भय से वह फकीर सिर पर रख पाँव,
उसके पीछे दौड़ रहा हो एक पुरुष भीषण विकराल,
उसे निगलने ही आया हो वह जैसे उसका बन काल।

कुछ ही मिनिटों में फकीर वह डर कर गया अचानक भाग,
पूर्ण हुई कुटिया सन्ध्या तक सद्विवेक उन सब में जाग,
हिम आच्छादित श्वेत सृष्टि में भी कर लेता था वह स्नान,
नित्य नेम से बिना कभी भी शीतल पानी का भय मान।

कई प्रेमियों ने समझाया करे न वह ऐसी कुछ भूल,
उस प्रदेश के मौसम के है शीत स्नान बिल्कुल प्रतिकूल,
करें देवता भी यदि आकर इस शीतल पानी में स्नान,
तो निश्चित वे भी चेतन से जड़ हो जाएँगे श्रीमान।

कहा राम ने प्रभु विषयक है भाव आपका अति कमजोर,
इसीलिए तो आप ग्रसित हैं दुर्बलता, भय से घनघोर,
कोई भी यदि राष्ट्र चाहता हो, बन जाए वह बलवान,
तो उपास्य वह अपना माने धीर वीर सशक्त महान।

इसीलिए तो हम करते हैं प्रभु को सत् चित् आनन्द स्वरूप,
कर उपासना जिसकी हम भी क्रमशः हो जाएँ तद्रूप,
रम्य सृष्टि के साहचर्य में जब होता था वह ध्यानस्थ,
बुलबुल पक्षी सिर पर आकर बैठा करते थे हो मस्त।

वहीं राम से मिलने आया युवक एक दिन पृथ्वी नाथ,
सर्वं त्याग करने को उद्यत झगड़ा कर पत्नी के साथ,
कहा राम ने "उचित नहीं है घबरा कर दुनिया से आप,
भाग उठें घर बार छोड़कर समझ उसे केवल अभिशाप।

अपितु आपको योग्य यही है रहें आप उसमें कटि–बद्ध,
आत्मनिष्ठ हों, स्वार्थ त्यागकर बनें कर्म करने में सिद्ध,
जग के बन्धन से छुटकारा पाने का है यही उपाय,
निर्भयता से कर्म करें सब पावन, बिना हुए असहाय।

हों न कभी भी आप इन्द्रियों की छलनाओं से संतप्त,
करें वहीं जो अन्तर्आत्मा कहे और हों जिससे तृप्त,
पड़ें उठाने ऐसा करने में चाहे जितने भी कष्ट,
इससे ही होगा आखिर में आत्मरूप का अनुभव स्पष्ट।

अतः जरूरी आप तजें सब दुर्वलता आलस्य विकार,
और प्रभू का चिन्तन करते करें शुद्ध आहार-विहार,
तो थोड़े ही दिन में निश्चित ;टल जाएगा सर्व अनर्थ,
और तभी आनन्द शांति भी दे 'देगें भगवान समर्थ।"

विन ओढ़े कुछ सोता था वह नीचे केवल घास पसार,
नित्य स्नान करने को करता झरनों के जल में संचार,
फिर भी विना गरम कपड़ों के वहाँ राम को रहते देख,
ऋषी भट्ट प्रायः कुटिया में रख जाते थे सिघड़ी एक।

यहीं एक दिन उठा राम के अकस्मात् ही सिर में शूल,
रख ली सिर के पास अंगाठी उसने पीड़ा से कर भूल,
औंधी सिघड़ी हुई अचानक बिखर पड़ी गर्दन पर आग,
जल जाने से गर्दन सहसा उठी वेदना दुगनी जाग।

किन्तु भुलाने पीड़ा सारी और हटाने उससे ध्यान,
बैठा रहता देर देर तक वह आसन मारे उस स्थान,
किया गाँव वालों ने अपनी अपनी श्रद्धा से उपचार,
कुछ हफ्तों के वाद आप ही भरे घाव सब पूर्ण प्रकार।

मिला राम को इसी बीच ही मित्र बालजी का सन्देश,
पिता बालजी के सहसा थे हुए लोक से इस निःशेष,
चला राम तत्क्षण शूलीपुर एकाकी सर्दी में आह,
हिम-आच्छादित विकट मार्ग की बिना किए कुछ भी पर्वाह।

घुटनों तक हिम में चलता वह गिरता–उठता बारम्बार,
विष्णूधारा तक जा पहुँचा बिना समय से माने हार,
फैला था पारे सा सम्मुख जमा विष्णुधारा का पाट,
एक मील के लगभग चौड़ा दर्पण सा अत्यन्त विराट।

चला राम उसके ऊपर से सोटी का लेकर आधार,
जमे बर्फ के नीचे बहती दीख रही थी जल की धार,
सतह कहीं थी मोटी काफी और कहीं पतली अत्यन्त,
किन्तु न था सम्भव पा जाना उसकी मोटाई का अन्त।

एक स्थान पर रक्खा ही था अभी राम ने अपना पैर,
चटका हिम अगले ही क्षण में रहा राम था जल में तैर,
बड़ी कठिनता से चलकर वह पहुँचा उस नाले के पार,
कर बैठा था किन्तु देह में उसके अब तक हिम संचार।

ठिठुर रहे थे गात राम के हुई उष्णता थी निःशेष,
लगा दौड़ने राम शीघ्र ही तन को शीतल होते देख,
बड़ी कठिनता से पहुँचा वह कुछ दिन में शूलीपुर ग्राम,
एक माह तक किया बालजी के घर ही उसने विश्राम।

लौट चिमिर में कई माह तक किया राम ने वहीं निवास,
और बाद में किया वहाँ से उसने वैरीनाग प्रवास,
शूलीपुर से पाँच मील है नयन मनोहर आरी ग्राम,
कुछ भक्तों के साथ जहाँ पर एक दिवस जा पहुँचा राम।

वहीं पास के जंगल में कर प्रभु-चर्चा में दिवस व्यतीत,
हुआ सभी का जंगल में ही पूर्व नियोजित भोजन-प्रीत,
संध्या को जब लगे लौटने राम सहित जंगल से लोग,
नहीं वहाँ था बर्तन ढ़ोने कोई, था विचित्र संयोग।

कहा बालजी ने उससे जब रहा न कोई शेष उपाय,
बोला वह 'रख दो उनको तुम पेड़ तले, यों करो न हाय
उन्हें न ले जा सकता कोई करो न कोई चिन्ता व्यर्थ,
राम भरोसे रहता उसकी रक्षा करते राम समर्थ।'

इतना कहकर लौट पड़ा वह शीघ्र वहाँ से आरी ग्राम,
और रात को हुआ वहाँ भी मंगलमय सत्संग महान,
वह भी भक्त साथ आया था, थी जिसकी छोटी दूकान,
उस जंगल की सीमा पर ही, जहाँ पड़ा था वह सामान।

होते ही सत्संग पूर्ण जब गया रात को वह दूकान,
और वहाँ से गया देखने पेड़ तले रक्खा सामान,
देख हुआ आश्चर्य-चकित वह प्रकट वहाँ पर भी था राम,
कसे लंगोटा टहल रहा था जहाँ पड़ा था वह सामान।

चमत्कार यह देख भक्त वह खो बैठा सारा औसान,
और राम के पास उसी क्षण किया दौड़ उसने अभियान,
पहुँच ग्राम जब देखा उसने अब भी था चालू सत्संग,
उसी भाँति अब भी था बैठा वहीं राम भक्तों के संग।

हुए भक्त आश्चर्य-चकित सब सुनकर वह अद्भुत वृत्तान्त,
किन्तु राम था मौन सर्वथा निर्विकार चिन्तन में शान्त,
सन् उन्निस सौ तीस साल की घटना है अत्यन्त विचित्र,
राम श्रीनगर में था घर जब नादर जी के, जो थे मित्र।

बाँध लगोटा परुष लिए वह घूमा करता था स्वच्छन्द,
इन्हीं दिनों 'शैंतानी-चक्कर' नामक लिख डाले थे छन्द,
घर में नादर जी की पत्नी और बहन थी सुन्दर एक,
भक्ति-भाव से करती थी जो उसकी सब सेवा अविवेक।

देख ननद की श्रीचरणों पर श्रद्धामय वह भक्ति अपार,
उठा सहज ही अन्तरतम में भाभी के कुत्सित कुविचार,
किया पती के शुद्ध हृदय में उसने शंका का संस्कार,
किया न फिर भी कुछ कहने का उससे, दोनों ने अविचार,।

किन्तु छिपा रह सकता कैसे ज्ञाता से उनका अज्ञान,
बिना बोले वह अन्तर्यामी गया बात उनकी पहचान,
कहा न उनसे एक शब्द भी किन्तु हुआ मन विक्षुब्ध,
पोत देह पर गोबर सहसा लगा कूच करने वह बुद्ध।

तभी बालजी भी आ पहुँचे अपने घर से, ज्यों संकेत,
मिला उन्हें हो राम-गमन का जान गए हों या अभिप्रेत,
अगले ही क्षण किया राम ने साथ बालजी के प्रस्थान,
किया न उसने यत्किंचित् भी नादर-दम्पति का अवमान।

कहा उन्होंने बहुत राम से कहीं न जाएँ उनको छोड़,
पर अब तक उसके निश्चय से कौन सका है उसको मोड़,
जैसे ही वह गया वहाँ से उस घर का सारा वह भाग,
जहाँ राम रहता था, सुलगा, लगी प्रज्ज्वलित होने आग।

पलक मारते ही वह कमरा समुचित हुआ अग्नि का ग्रास,
उसे बुझाने का निश्चित ही व्यर्थ हुआ प्रत्येक प्रयास,
चढ़ पहाड़ सारा दिन पहुँचा उधर राम जंगल में घोर,
सूख रहा था कण्ठ प्यास से कहीं न था पर जल उस ओर।

पूछ गड़रियों से जाना वह था अत्यन्त भयानक स्थान,
नहीं वहाँ था झरना कोई और न जीव: का संधान,
भीहड़ वन था· वन्य-जन्तु थे जहरींले, हिंसक, खूँखार,
जल था केवल पार शिखर के जो था पशुओं का आगार।

'रीछ नगर वह कहलाता है' कहा गड़रियों ने साशंक,
'वहाँ न जाएँ आप, वहाँ है रीछों का छाया आतंक',
बिना किए प्राणों की चिन्ता गया राम झरने के पास,
बिना अन्न के जल पीकर ही किया रात को वहीं निवास।

देख वालजी को भय-आकुल कहा राम ने 'लो यह राख,
अपने चारो ओर छिड़ककर सो जाओ बिल्कुल चुपचाप',
हुआ राम ध्यानस्थ वहीं पर भुला आपदाएँ, निर्भीक,
और वहीं सो गए वालजी बना राख की वर्तुल लीक।

सुप्त वालजी लगे देखने जहाँ छिड़क रक्खी थी राख,
वहीं खड़े हनुमान कई थे उन्हें देखते से निर्वाक,
उधर हुए नादर-पत्नी को जच्चा सम्बन्धी अपघात,
माता बन सकने के पहले हो जाता था गर्भ-निपात।

इस अरिष्ट से बचने के हित उस दम्पति ने किये उपाय,
कई, किन्तु उपचार सभी वे रहे व्यर्थ निष्फल असहाय,
उन्हीं दिनों काश्मीर राज्य में बंगाली बाबा थे सिद्ध,
नादर जी से कहा किसी ने जाएँ वे उनके सन्निद्ध।

अतः गए नादर जी सत्वर बंगाली बाबा के पास,
सोच हृदय में एक और यह करके देखें शेष प्रयास,
उन्हें देखते ही बाबा जी बोले बिन सोचे तत्काल,
'नहीं शक्ति है त्रिभुवन में जो करे दूर यह दुःख कराल।

कभी आपके यहाँ प्रकट हो रहते थे घर में जो संत,
वे चाहें तो हो सकता है सकल आपके दुःख का अन्त,
हाय आपके संशय कारण किया उन्होंने गृह-परित्याग,
क्योंकि आपने समझा साध्वी करुणा को माँसल अनुराग।

अतः आपको है श्रेयस्कर करें कृपा उनकी ही प्राप्त,
हासिल उनका करें अनुग्रह यही निवेदन मेरा आप्त,
बाबा जी के उन बचनों का नादर जी पर हुआ प्रभाव,
लगा खटकने उन्हें अचानक अन्तरतम में राम-अभाव।

गए वहाँ वे राम जहाँ था आत्म-ग्लानि से होकर शुद्ध,
देखा उसमें उद्भासित था अब भी पहला प्रेम-विशुद्ध,
चरण-कमल कस लिए करों से वही लोचनों से जल धार,
हुआ उसी क्षण गत पापों से नादर दम्पति का उद्धार।

एक बार फिर चले राम घर था उनका केवल अनुरोध,
जिसे किया स्वीकार राम ने हरने को उनका विक्षोभ,
इसके बाद हुए माता को बच्चे स्वस्थ और बलवान,
अब भी हैं जीवित जो सारे सुखी सर्वदा समृद्धिवान।

रहता था जब राम धूपवन वहीं रहा करता था एक,
मुसलमान दर्जी जो सीता था उसका कपड़ा प्रत्येक,
देख राम का सादा जीवन और श्वेत उसका पहराव,
जागा उस दर्जी के मन में उसके प्रति शंका का भाव।

लगा सोचने है वह खुफिया रहता कर साधारण वेश,
मिलता रहता लोगों से ज्यों हो वह उनमें से ही एक,
उसी रात को देखा दर्जी ने तद्विषयक स्वप्न विशेष,
जुटी भीड़ थी, जिसके सम्मुख बड़ा मंच रक्खा था एक।

उसी मंच पर राम अधिष्ठित होकर था कर रहा प्रचार,
दृश्य देखकर वह, दर्जी का हुआ सिद्ध विभ्रम निःसार,
तीस ईसवी सन् के लगभग तुर्कगाँव में था जब राम,
कूल ग्राम के निकट अवस्थित एक दिवस पहुँचा उरुग्राम।

तुर्कगाँव का एक व्यक्ति जो करता था रेशम का काम,
उसी समय चल पड़ा श्रीनगर और वहाँ भी था लो राम,
भ्रम कहता आँखों का यदि तो वह अनुभव था जाग्रत पूर्ण,
राम खड़ा था उसके सम्मुख देह किए धारण सम्पूर्ण।

यही नहीं, वह बोला उससे कहे लौटकर वह सन्देश,
श्रद्धालू शिव कौल भक्त से एक राम का यही विशेष,
'राम मजे में है, पहुँचेगा तुर्कगाँव दो दिन उपरान्त,
जबकि राम था तुर्कगाँव में ही प्रस्तुत उस क्षण नित्तान्त।

देख अविश्वसनीय दृश्य जब वापस लौटा वह उरुग्राम,
देखा उसने पाठ-मग्न था वहीं पूर्ववत् बैठा राम,
पूछा उत्सकतावश उसने अपने उस अनुभव का मर्म,
बोला वह 'निर्माण-सिद्धि' का ही है यह मामूली कर्म।

विद्यमान था राम यहीं पर यहीं स्थूल उसकी थी देह,
किन्तु श्रीनगर में पहुँचा था उसका मानस निःसन्देह,
इसी समय जब हुआ अचानक काश्मीर में हत्याकाण्ड,
हुआ प्रकट वह दिव्य पुरुष फिर धार प्रकृतिमय तन अष्टांग,

कहा राम से करो निरन्तर निर्भय होकर अपना काम,
और हुआ अदृश्य वहाँ से दिव्य पुरुष तत्क्षण निष्काम,
किया राम ने ग्राम-ग्राम में उन्हीं दिनों पैदल संचार,
दुखी जनों की रक्षा करने परशु हाथ में अपने धार।

दुर्गानाम गुफा में रह कर किया राम ने जब उपवास,
इक्कीस दिवस तक और मौन भी रक्खा, जन सब हुए हताश,
कई जनों ने कहा करे वह अपने उस दृढ़ व्रत को भंग,
किन्तु राम ने बैठ गुफा में त्याग दिया उनका भी सङ्ग।

अन्तिम दिन आ हुआ उपस्थित वही पुरुष वह दिव्य महान,
बोला क्यों यों कष्ट देह को देते हो बनकर अनजान,
गीता कहती भुला शास्त्र को जो भी करते हैं तप घोर,
कष्ट व्यर्थ तन को देते हैं व्यक्ति आसुरी वे घनघोर।

पंचभूत मय उसके तन में करती है जो आत्मा वास,
नासमझी से पाती है वह ऐसे तप से नाहक त्रास,
इतना कहकर हुआ पुरुष वह त्वरित सामने से अदृश्य,
और राम ने देखा महिला को लाए भोजन सदृश्य।

किया राम से उस वृद्धा ने भोजन करने का अनुरोध,
किया राम ने ग्रहण अन्न वह, हुआ सभी को जिससे मोद,
सन उन्निस सौ तीस साल में अमरनाथ जा पहुँचा राम,
अमरनाथ बनने की इच्छा फलीभूत करने अभिराम।

वहीं राह की एक गुफा में पाकर मन वांछित एकान्त,
हुआ आत्मचिंतन रत वह प्रकृति-गोद में सुन्दर शान्त,
इसी गुफा में पहुँचे डाकू चार, लाश घोड़ों पर लाद,
देख राम को वहाँ अचानक रही अपूरी उनकी साध।

लगा उन्हें वे तत्क्षण उसकी कर डालें हत्या चुपचाप,
और लाश जो साथ लिए थे वहीं गुफा में रक्खें गाड़,
किन्तु राम को नीडरता से देख आत्मचिंतन में मौन,
निष्ठुरता से पूछा सबने 'बतलाओ जी तुम हो कौन ?'।

यहाँ अकेले ही तुम हो या और व्यक्ति कोई है साथ,
कैसे बच पाओगे तुम यदि करें तुम्हारा हम सब घात,
कहा राम ने 'मैं न अकेला और न कर सकता नुकसान,
मेरा कोई भी, जब तक है अमरनाथ प्रस्तुत इस स्थान।

कहा राम ने इतना ही बस भर कर शब्दों में आह्वान,
और दृष्टि स्थिर कर दी उनपर पाने उन सब का औसान,
हुआ राम की तीव्र दृष्टि का उन सब पर अद्भुत परिणाम,
सहसा आतंकित हो सबने झुक कर उसको किया प्रणाम।

बिन बोले चुपचाप वहाँ से गए टट्टुओं के वे पास,
और पहुँचे अन्यत्र वहाँ से दबा भूमि में दी वह लाश,
दुर्गानाग निकट कुटिया में कुछ दिन उसने किया निवास,
रहता था वह वहाँ अकेला केवल बालजी थे पास।

इसी कुटिया में किया राम ने, इक्कीस दिवस का उपवास,
केवल पानी पर रहकर वह भ्रमण किया करता था पास,
यहीं राम से मिले एक दिन 'मनुजी' श्री मनमोहन लाल,
काश्मीर के राज्यपाल-पद पर थे वे नियुक्त कुछ काल।

कुटिया से कुछ ही अन्तर पर झेलम-सरिता तट के पास,
रम्य लक्ष्मी-निवास महल सा था मनुजी का स्थान-निवास,
स्नेहशील थे वे श्रद्धालू था सन्तों पर उनका प्रेम,
यथा-शक्ति सन्तों की सेवा करना था 'मनुजी' का नेम।

देख राम को व्रत से दुर्बल रहे न बैठे वे चुपचाप,
आकर कहने लगे प्रेम से 'फल का रस ही ले लें आप',
किन्तु राम का निश्चय दृढ़ था सुनी न उसने उनकी बात,
दुर्बल अतिशय होने पर भी नहीं तजा उसने उपवास।

व्रत के बारहवें दिन उसके उठा उदर में सहसा शूल,
पर मलस्यासन के करते ही कष्ट हुआ उसका सब दूर,
इसी बीच मनुजी बन बैठे शीघ्र राम के पक्के भक्त,
देख भावना उनकी उसपर स्वयं राम भी था अनुरक्त।

इक्कीस दिवस पूरे होते ही वही पुरुष फिर दिव्य महान,
आकर बोला 'इतना तुम क्यों उठा रहे हो कष्ट निदान,
दिव्य साधु ने श्री गीता के अशास्त्र विहितं घोरं श्लोक,
कर्षयन्तः शरीरस्थं से दिया राम को ज्ञानालोक।

तभी एक माता आ पहुँची लिए साथ में भोजन पेय,
किया राम ने निज व्रत पूरा अपना कर वह भोजन श्रेय,
मिला राम को यहीं एक दिन पिता, बन्धु का भेजा पत्र,
'हम मिलने को पहुँच रहे हैं कहीं न जाओ तुम अन्यत्र।

लिख डाला तत्काल राम ने पत्र पिता को करते स्पष्ट,
राम शीघ्र ही दूर जा रहा व्यर्थ उठाएँ आप न कष्ट,
राम वहाँ से रावलपिण्डी पहुँचा अगली प्रातःकाल,
और वहाँ से रामबाग को गया पता पाकर तत्काल।

वहीं साधुओं के टिकने का सुन्दर था अत्यन्त प्रबन्ध,
कर सकते थे वे तप-साधन विन बाधाओं के स्वच्छन्द,
रामबाग की एक कुटी के सम्मुख रख अपना सामान,
लगा साफ करने कुटिया को जो थी गन्दी पड़ी महान।

वहीं छात्र चढ़कर पेड़ों पर पढ़ने बैठे थे चुपचाप,
देख राम को कूद पेड़ से, लगे सफाई करने आप,
एक छात्र ने पाया उससे संस्कृत का आवश्यक ज्ञान,
और परीक्षा में आशा से बहुत अधिक पाए गुणमान।

सफल छात्र का उस हो जाना थी घटना अत्यन्त विचित्र,
जिसके कारण वे विद्यार्थी बने राम के सच्चे मित्र,
एक दिवस ये सब विद्यार्थी लिए राम को अपने संग,
चले सैदपुर रामकुण्ड को सृष्टि जहाँ थी अतिशय रम्य।

भोजन करते समय किसी ने किया वहाँ अश्लील विनोद,
लगा न श्रेयस्कर किंचित भी उसको वह आमोद-प्रमोद,
कहा राम ने बलदायी यह करो न भोजन तुम सब प्राप्त,
जहाँ गन्दगी और पतन के तत्व उपस्थित हों पर्याप्त।

सुनकर उसका तत्व-निरूपण किया सभी ने खुलकर हास्य,
अधिक राम ने किया स्पष्ट तब तद्विषयक अपना वह भाष्य,
कहा राम ने 'सुनो साथियो हम सबके वे सभी विचार,
जो दुर्बलता, विषय वासना और भीति करते संचार।

वे सब ही हैं निपट गंदगी के कुत्सित विषमय आगार,
श्रेय नहीं है हमें ग्रहण हम करें वहाँ अपना आहार,
ऐसा करने से हम उसको कर देते हैं पुष्टि प्रदान,
बोलें फिर हम दिव्य अन्न से कैसे हो सकते वलवान।

अतः श्रेय है तुम्हें करो तुम स्मरण उसी प्रभु का अविराम,
जो कुछ भी तुम करो तुम्हारे सजग हृदय में हों श्रीराम,
प्राप्त करोगे इससे ही तुम शक्ति, संगठन वा सामर्थ्य,
जिससे होगा जीवन उज्ज्वल निर्भय, सुखमय और समर्थ।'

ओजपूर्ण उसके भाषण का उन छात्रों पर पड़ा प्रभाव,
उन सब ने लिख डाले अपनी डायरियों में उसके भाव,
हुआ रवाना राम श्रीनगर अगले ही दिन प्रातःकाल,
बस के अड्डे पर रो-रोकर छात्र हो रहे थे बेहाल।

राम श्रीनगर में ठहरा जा प्रेमनाथ ठुस्सू के स्थान,
किन्तु उसे थी इच्छा पाए वह अच्छा सा स्थल सुनसान,
ठुस्सू जी के एक मित्र की खेती-बाड़ी थी भरपूर,
नदी चन्द्रभागा के तटपर बस्ती से थोड़ी ही दूर।

वहाँ मनोहर वन्यराजि थी और किनारे पर मैदान,
विहँस रही थी प्रकृति सुन्दरी था स्थल वह अतिशय सुनसान,
मंत्र-मुग्ध सा लगा देखने वह पियूषमय जीवन चित्र,
लगा उसे वह रहे यहीं पर तम्बू यदि कोई दे मित्र।

जान राम का भाव मित्र ने तम्बू का कर दिया प्रबन्ध,
लगा विचरने राम वहीं पर अनुभव करता आत्मानन्द,
एक दिवस कुर्सी पर बैठा सरिता के तट पर एकान्त
सान्ध्य-काल के बने सुनहरे वन को देख रहा था शान्त।

अकस्मात नभ में छा आए काले से बादल घनघोर,
आँधी ने उससे पहले ही शुरू किया दिखलाना जोर,
वर्षा और पवन को लेकर चला वहाँ भीषण तूफान,
जिससे उस जर्जर तम्बू के हुए अदृश्य सारे औसान।

सभी खूटियाँ उस तम्बू की उखड़ रही थी बारम्बार,
और आ रही थी छिद्रों से भीतर पतनाले सी धार,
लिया राम ने पकड़ बाँस को देने तम्बू को अवलम्ब,
और साथ ही काव्य-सर्जना कर डाली उसने अविलम्ब।

मानव-जीवन रूपी तम्बू के भी हैं दो पक्के बाँस,
है वैराग्य बाँस एक यदि, तो निश्चित दूजा अभ्यास,
धैर्य तीसरा बाँस सहारा देने वाला है बलवान,
यम-नियम दस सुदृढ़ खूटियाँ और धर्म-भू का उपमान।

यही खूटियाँ धर्म-भूमि में जब ही दी जाती हैं गाड़,
और शान्ति आनन्द अभयता सुदृढ़ डोरियाँ बाँध प्रगाढ़,
जब तम्बू इन दसों खूटियों से हो जाता है मजबूत,
नहीं हिला फिर उसको सकते आँधी, पानी के यमदूत।

सम्भव है कुछ आघातों से हो जाए तम्बू क्षत क्षार,
किन्तु अचल वह खड़ा रहेगा कर हासिल प्रभु का आधार,
रम्य चन्द्रभागा के तट पर किया राम ने कुछ दिन वास,
और वहाँ से 'मनुजी' के घर पहुँचा झेलम तट के पास।

झालावार राज्य के मनुजी तब तक थे बन गये दिवान,
किन्तु अभी वे घरवालों को नहीं ले गये थे संस्थान,
रहते थे इन्दौर शहर में मनुजी की कन्या, दामाद,
रोग ग्रस्त थे रहे जमाई सारे उपचारों के बाद।

हुई एक दिन सहसा उनकी शोचनीय सी स्थिति अत्यन्त.
लगा सभी को दूर नहीं है अब रोगी से उसका अन्त,
मिला राम को तभी अचानक मनुजी का आवश्यक तार,
लिखा 'नहीं है आशा कोई अब होने की स्वास्थ्य-सुधार।

करके देख लिए हैं हमने सम्भव सारे ही उपचार,
अब तो शेष बचा है केवल करुणामय प्रभु का आधार,
अतः प्रार्थना श्रीचरणों से करें आप मुझ पर एहसान,
अपनी दिव्य शक्ति से कृपया उन्हें करें आरोग्य प्रदान'।

कातरता की उस भाषा से उठा राम का हृदय पसीज,
लिख डाला उसने मनुजी को 'हो जाएगा स्वस्थ मरीज,
करें न चिन्ता आप जरा भी नहीं मृत्यु आयेगी पास,
राम नहीं तो दे देगा निज प्राण, आप रखें विश्वास'।

लिख देने के बाद राम को लगा बड़ी उसने की भूल,
व्यर्थ दिया उसने आश्वासन प्रभु की इच्छा के प्रतिकूल,
किन्तु तीर अब छूट चुका था राम वचन से था मजबूर,
बैठ अकेले सतत ॐ का लगा भेजने अमृत दूर।

हुआ ॐ के संजीवन का निश्चित रोगी पर परिणाम,
मिली सूचना उसको रोगी को था अब काफी आराम,
उसके पहले उस रोगी से नहीं राम की थी पहचान,
और नहीं था देखा उसने रोगी के रहने का स्थान।

किन्तु ध्यान में देखा करता वह रोगी को अपने पास,
और उपस्थित सभी जनों को सेवा करते वहाँ उदास,
एक रात को बैठा था वह अपने कमरे में ध्यानस्थ,
देखा उसने यमदूतों को पहुँचा रोगी के निकटस्थ।

काल-रात्रि के अन्धकार में यमदूतों के निष्ठुर पाश,
लगे फाँसने उस रोगी को देख दृश्य वह राम हताश,
उठकर बाहर आया सत्वर लगा देखने चारों ओर,
किन्तु वहाँ था चिन्ह न कोई अन्धकार छाया था घोर।

सुबह डायरी में अनुभव लिख, गया राम बाहर कुछ काम,
खुली डायरी का टेबिल पर रहा न उनको किंचित ध्यान,
मनुजी की दुहिता जब आई करने को वह कमरा साफ,
देख डायरी का पन्ना वह घटना सब उसने ली भाँप।

प्रातः विधि से नित्य मुक्त हो जब वापस घर लौटा राम,
गृहवासी रो बिलख रहे थे मचा वहाँ पर था कोहराम,
दुखित स्वयं भी था वह अतिशय लेकिन ऊपर से था शान्त,
बहुत उन्हें समझाया उसने किन्तु रहे वे दुःखाक्रान्त।

तभी एक चपरासी ने आ दिया उसे आवश्यक तार,
दुःखाकुल सब स्तब्ध रह गए पढ़कर, जो था वज्र-प्रहार,
उसी समय लिख डाला उसने एक पत्र मनुजी के नाम,
अपने वचन भंग का पूरा प्रायश्चित करेगा राम।

मनुजी की पुत्री शान्ति ने पढ़ा चुराकर था वह पत्र,
हुए सभी गृहवासी चिन्तित और मित्र जो थे अन्यत्र,
उसी शाम घरवाले सारे थे जाने इन्दौर तैयार,
किन्तु राम के देह-त्याग की बात लगी उनको अविचार।

कर देखा सबने घिघियाकर उससे बार-बार अनुरोध,
पाप आत्म-हत्या होती क्यों तुम्हें न इसका होता बोध,
'जो भी प्रभु की इच्छा होगी हम क्या कर सकते हैं आप,
कहा राम ने और सोचने लगा जिसे जग कहता पाप।

यह है उसकी भ्रान्ति न होता अविनाशी आत्मा का नाश,
अपितु आत्म-हत्या है केवल स्थूल मनुज का देह विनाश,
भौतिक इच्छाओं को पूरा करने में भी तो अनजान,
देह नाश हैं करते रहते बिना पाप हम उसको मान।

सत्य ध्येय जीवन का पाने दे दें यदि हम अपने प्राण.
तो हम केवल जीर्ण वस्त्र को छोड़ नया करते परिधान,
कहे राम ने सारे मित्रों से अपने ये सत्य विचार,
पर उसका संकल्प मानने हुआ नहीं कोई तैयार।

बड़ी कठिनता से समझाकर उन्हें, राम पहुँचा बड़ग्राम,
और वहाँ से पैदल चलकर पहुँचा वह शूलीपुर ग्राम
शूलीपुर की इस यात्रा में शिष्य बालजी भी थे पास,
और दूसरा जगन्नाथ था सखा, राम-चरणों का दास।

लगा राम को योग्य यही है तज दे वह अपना आहार,
छोड़ सके वह जिससे अपने इस मानव-तन का जड़ भार,
इस प्रयोग से देह-त्याग में लग सकता था काफी काल,
और राम को वचन-भंग का प्रतिपल दुःख रहा था साल।

अत: राम ने तय कर डाला होगा श्रेयस्कर विष-पान,
नहीं लगेगा पता किसी को छोड़ सहज देगा वह प्राण,
आधा-आधा तोला ले ली तीनों ही ने शुद्ध अफीम,
चला राम सानन्द वहाँ से किन्तु भक्त थे दुखी असीम।

अगले दिन वे तीनों बैठे ताँगे में पहुँचे बड़ग्राम,
और वहाँ से पैदल सन्ध्या को पहुँचे शूलीपुर ग्राम,
शूलीपुर से कुछ अन्तर पर ग्राम बालजी का था रम्य,
जहाँ बनी थी एक झोपड़ी और पटांगण सम्मुख भव्य।

चारों ओर खिले थे पौधे फल फूलों के अगणित रंग,
जहाँ किया करता था पहले सबके साथ राम सत्संग,
यहीं राम आकर ठहरा था जान स्थान वह होगा शान्त,
दर्शन हित आने वालों से रहा न पर वांछित एकान्त।

विवश राम ने दिया बालजी को आखिर अन्तिम आदेश,
'लगा द्वार पर दो तुम ताला करे न कोई यहाँ प्रवेश,
नहीं चाहता तुम दोनों को भी रक्खूँ मैं अपने पास,
अधिक काल तक सेवा करने और साथ मेरे उपवास'।

राम करेगा रात नौ बजे उस अफीम का आज प्रयोग,
त्याग देह वह पूर्ण करेगा आत्मा-परमात्मा का योग,'
सुनते ही संकल्प राम का हुए बालजी दुखित अपार,
रुका न आँखों में करुणा का उद्वेलित वह पारावार।

कहा राम ने 'उचित नहीं है साधक दे निज हिम्मत हार,
योग्य उसे है वह आज्ञा को करे सर्वदा ही स्वीकार',
उसी झोपड़ी के प्रांगण में किया राम ने निश्चित स्थान,
कहा बना दें चिता राम की वहीं शीघ्रता से नित्तान्त।

तत्पश्चात् लिए दोनों को कुटिया में जा पहुँचा राम,
कहा बालजीसे लीपे वह कुटिया गोबर से अविराम,
ले आए जगन्नाथ साथ घृत-दीपक, फूस आदि सामान,
लेकिन उर में उठा हुआ था भीषण पीड़ा का तूफान।

कहा राम ने जगन्नाथ से 'कहो रात तुम जाकर ग्राम,
यहाँ रहेगा साथ बालजी राम करेगा जब विश्राम,
आ सकते हो यदि चाहो तो चार बजे तुम प्रातःकाल,
मिल जाएगा तुम्हें बालजी से मेरा तब सारा हाल।

छोड़ चुका हो प्राण राम यदि करो न बैठे दुख बेकार,
लाकर बल्कि विप्र बस्ती से करो योग्य अन्तिम संस्कार,
तत्पश्चात् अमर आत्मा पर दिया उन्हें उसने व्याख्यान,
रोम-रोम पुलकित था उसका होता पूर्ण देख अरमान।

छन्द-बद्ध हो फूट रहे थे उसके वे अन्तिम उद्गार,
जगन्नाथ लिख रहे उन्हें थे पर न आज वे प्राप्य विचार,
आशय था पर उस भाषण का 'मृत्यु देव मेरे प्रिय मित्र!
रुदन दुःख से सदा तुम्हारा होता स्वागत है सर्वत्र।

यही एक अनुभव पाया है तुमने जग में बारम्बार,
किन्तु मित्र वह झूठा साबित होगा निश्चित ही इस बार,
हर्ष भरे मुखड़े से स्वागत आज तुम्हारा होगा मित्र,
चकित भाव से तुम देखोगे घटना यह अत्यन्त विचित्र।

पर करना तुम चाहो तो भी अमर-अमर आत्मा का नाश,
फाँस सकेगा नहीं तुम्हारा उस असीम को सीमित पाश,
बना रहेगा देह त्याग कर भी मेरा शाश्वत आनन्द,
शक्ति तुम्हारी लगा सकेगी नहीं तनिक उसपर प्रतिबन्ध।

पहुँच तुम्हारी है काया तक जिसके तुम हरते स्वच्छन्द,
अतः पधारो प्रस्तुत है यह नश्वर तन मेरा सानन्द',
इतना कह कर शान्त भाव से हुआ राम कुश पर आसीन,
लगा घोलने एक पात्र में वह अफीम हो द्विधा विहीन।

शुरू किया करना पारायण गीता का मुख से नित्तान्त,
वहीं बालजी, जगन्नाथ थे बैठे अकुलाए पर शान्त,
रात नौ बजे के लगभग तब किया राम ने विष का पान,
और बताया जगन्नाथ को करे गाँव को वह प्रस्थान।

भारी पैरों से तज कुटि को और दृगों में भर जल-धार,
चला भक्त अनमना गाँव को करता रह-रह कर सीत्कार,
किया बालजी ने कुटिया का भीतर से दरवाजा बन्द,
आ बैठे वे जहाँ राम था लेटा दर्भों पर निर्द्वन्द।

दस बारह उपनिषद् राम को थे पूरे के पूरे याद
लेट घास पर पाठ उन्हीं का लगा राम करने चुपचाप,
कर रहा राम था मृत्यु प्रतीक्षा आनन्दित होकर नित्तान्त,
मृत्यु न आई बीत गए पर ऐसे ही दो घण्टे शान्त।

दीपक घी का अब भी कुटि में धुंधला सा था किए प्रकाश,
और बालजी मौन प्रार्थना में तन्मय थे बैठे पास,
पता नहीं सहसा पहुँचा वह कब निद्रा देवी की गोद,
खुली आँख जब सात बजे थे प्रातः से रिसता था मोद।

पास बालजी जगन्नाथ थे बैठें अब भी, पर निर्द्वन्द,
देख दृगों का उन्मीलन वे दोनों बोल उठे सानन्द,
'मृत्यु देव भी नहीं कर सके हिम्मत, करें आपको स्पर्श,
लौट गए वे लज्जित होकर मान इसे अपना अपकर्ष।

कहा राम ने हो सकता है बात तुम्हारी ही हो ठीक,
देखा मैंने भी सपना था इसी बात का दिव्य प्रतीक,
याद नहीं है मुझे उसे मैं स्वप्न कहूँ अथवा प्रत्यक्ष,
निर्विवाद है इतना लेकिन आई थी माँ दिव्य समक्ष।

लेटा था जब यहाँ भूमि पर देखा मैंने दृश्य महान,
दिव्य सुन्दरी हुई अवतरित श्वेत वस्त्र करने परिधान,
आ बैठी वह मेरी सम्मुख जगज्जीवनी ज्योतिर्रूप,
कर-पल्लव में लिए तूलिका सुन्दर, कोमल, दिव्य अनूप।

रवि किरणों से थे प्रकाशमय रेशम से उसके सब तार,
लगी फेरने कूची मुझ पर सस्मित दिव्या बारम्बार,
अमृतमय उस दिव्य स्पर्श से पुलक उठा मेरा तन, प्राण,
अनुभव जीवित जीवन का मैं लगा प्राप्त करने अनजान।

देवी के उस दिव्य स्पर्श का ही हो सकता है परिणाम,
विवश लौटना पड़ा मृत्यु को विना हरे ही मेरे प्राण,
जरा देर के बाद राम को हुई जोर की कैय जो एक,
निकल पड़ा भीतर से पानी पीला पीला विषमय देख।

लगा राम को उसे मिला है जन्म दूसरा निःसन्देह,
यद्यपि अब भी वही पुरानी मिली उसे है उसकी देह,
उचित न जाना करे प्रभू की इच्छा में वह हस्तक्षेप,
लगा विचरने वह तव से ही बिना किए इंद्रिय–विक्षेप।

इस प्रकार प्रण किया राम ने पूरा अपना पर भवितव्य,
चाह रहा था पूर्ण करे निज लोक–कार्य वह अपना भव्य,
एक बार सतलज के तट पर करता बैठा था वह ध्यान,
देखा उसने खड़ा सामने उसी साधु को दिव्य महान।

कहते 'अब तुम क्यों न शीघ्र ही अमरनाथ करते प्रस्थान,
देखा उसने खोल दृगों को हुआ उसे आश्चर्य महान,
वही पुरुष प्रत्यक्ष खड़ा था उच्चारित करता वे बोल,
असमंजस में देख रहा था अपनी जाग्रति राम टटोल।

कहा राम ने 'मैं प्रस्तुत हूँ अगर आप भी आएँ संग,
और चले दोनों था केवल एक वस्त्र ढकने को अंग,
बीच राह में कहा साधु ने दे न सकूंगा अब मैं साथ,
हो तुममें हिम्मत तो जाओ एकाकी, पथ था अज्ञात।

और हुआ अदृश्य साधु वह भीहड़ जंगल में तत्काल,
बढ़ा राम आगे एकाकी बर्फीले पथ से विकराल,
पास मात्र संकल्प–शक्ति थी था केवल प्रभु का आधार,
इसीलिए तो अमरनाथ में किया कठिन पथ से संचार।

पहुँच गुफा में बैठा शिवजी के सम्मुख जब करने ध्यान,
वही साधु आ हुआ अवतरित करने निज सान्निध्य प्रदान,
तभी साधु में देखा उसने नयन मनोहर शिव का रूप,
जीवित, जाग्रत, भस्म निमज्जित सुन्दर उनके ही अनुरूप।

नहीं गुफा में अमरनाथ की रात काटता कोई व्यक्ति,
जम जाती है वायु वहाँ की नहीं साँस की रहती शक्ति,
किन्तु वहीं पर रहा गुफा से राम कई दिन तक सानन्द,
नहीं भूख से या सर्दी से हो मानों उसका सम्बन्ध।

इसी बीच जंगल विभाग का आ पहुँचा अधिकारी एक,
हुआ उसे आश्चर्य राम को बिना अन्न वस्त्रों के देख,
देख राम को वहाँ विचरता हुआ नहीं उसको विश्वास,
क्योंकि नहीं थी जीवन–सुविधा कोई भी तो उसके पास।

कौतूहलवश पूछा उसने करते हो तुम कैसे वास,
यहाँ वर्फ में, वस्त्रहीन वा नहीं अन्न भी जब है पास,
सुनते ही यह प्रश्न राम के खेल गई मुख पर मुस्कान,
बोला वह जो दूर वनस्पति आप देखते हैं श्रीमान।

लेता हूँ आहार उसी से अपनी आँखों से मैं खींच,
और सुखी हूँ रहकर भी इस बर्फीले शिखरों के बीच,
हुआ न अधिकारी को उसकी बातों पर किंचित विश्वास,
'है अशक्य वह बोल पड़ा निज वाणी में भरकर उपहास।'

कहा राम ने 'झूठ नहीं है बात मानिए, है यह सत्य,
इन्हीं लोचनों से पाता हूँ वनश्री से भोजन मैं नित्य,
मुझे बताएँ आप स्वयं ही जो भोजन करते हैं आप,
उसके बदले दूध मिले तो क्या न वही होगा पर्याप्त।

वही दूध कर सकता आधा मथने में नवनीत प्रदान,
और निकल सकता उससे भी आधा घृत लगभग श्रीमान,
राशि भिन्न है तीनों की पर गुण में वे हैं एक समान,
कम होकर भी घृत कर सकता उसी दूध की शक्ति प्रदान।

घी से भी यदि अधिक अल्प हो मात्रा में घृत-जन्य पदार्थ,
होगी उतनी ही निश्चित ही क्षुधा तृप्ति उसमें उदरार्थ,
वह भी वस्तु अगर बन जाए घटकर एक अगोचर तत्व,
तो उसमें भी मूल दूध का प्रस्तुत होगा जीवन सत्व।'

इसी सूक्ष्म भोजन से करता तृप्त क्षुधा को अपनी राम,
खींच दृष्टि से जीवन-रस वह लेता वनश्री से अभिराम,
जँची न उसकी बात अतिथि को किन्तु सामने देख प्रमाण,
अधिकारी ने तर्कहीन हो किया उसे तत्काल प्रणाम।

दुष्कर यात्रा अमरनाथ की उसने की है सत्रह बार,
ब्रह्मप्राप्ति के साथ प्रकृतिका पाया है आनन्द अपार,
योगानन्द महाशय को जब पत्र पिता ने लिखे अनेक,
तब चौंतिस में उन महन्त ने कर विचार उनपर सविवेक।

कहा राम से जाए घर वह माण्डव्याश्रम से तत्काल,
मिले पिता माता से अपनी दुःख रहा है जिसको साल,
किन्तु राम ने लिखा पिता को तजा न है उसने संसार,
उन महन्त जी के कहने पर और न उसका उनपर भार।

कोई भी है गुरु न उसका नहीं किसी का है वह शिष्य,
दिव्य पुरुष है वही राम का एक मार्ग-दर्शक अदृश्य,
मात्र प्रेरणा से उसकी ही किया राम ने जग का त्याग,
और उसी के इङ्गित पर वह स्थान-स्थान करता परित्याग।

मन ही कारण है जगती का पर जब उसमें ही है स्थान,
नहीं व्यक्ति को रहता तब वह बन जाता उसको अनजान,
नहीं राम का घरवालों से है यत्किंचित भी सम्बन्ध,
वह स्वतन्त्र है और विचरता जहाँ उसे मिलता आनन्द।

इन्हीं दिनों था शान्ति पुरुष से सुरभित उसका मन-उद्यान,
और उसी की पूर्ण प्राप्ति को था वह उत्कण्ठित गतिमान्,
मिला उसे था धैर्य (लक्ष्मण) एवं ब्रह्मचर्य (हनुमान)
मार मोह (रावण) पानी थी अब भी सीता (शान्ति) महान।

पूर्ण विजेता होने पर ही पाकर सीता शान्ति निधान,
मिलने रिश्तेदारों से वह कर सकता था घर प्रस्थान,
इसीलिए तो त्रिपुरा में भी आया था जब अवचित योग,
प्रस्तुत कांग्रेस में होकर भी उससे मिल न सके वे लोग।

काट, नवम्बर सन् चालिस में, चौदह वर्षों का वनवास,
प्रथम बार वह गया जबलपुर पिता और माता के पास,
स्थित प्रज्ञ थी तब उसकी स्थिति सहज सभी से था व्यवहार,
उन्हें दिया उपदेश राम ने और जन्म से दिया उबार।

टिक्कू सर्वानन्द एक थे भक्त राम के श्रद्धावान,
एक ज्योतिषीं के ज्योतिष पर था उनको विश्वास महान,
एक बार होते ही पत्नी गर्भवती, वे व्यक्ति सुजान,
पास ज्योतिषी के जा पहुँचे सहज जानने को गृहमान।

कहा ज्योतिषी ने जब उनसे हाय! अमङ्गल है संयोग,
शिशु, माता दोनों को घातक है प्रजनन कहता ग्रहयोग,
सुनकर वह भविष्य टिक्कू जी हुए वेदना से बेहाल,
जा पहुँचे वे पास राम के त्राहि-त्राहि करते तत्काल।
कहा राम ने 'चिन्ता उसकी घबराकर यों करें न व्यर्थ,
प्रभु की अनुकम्पा से होगा यत्किंचित भी नहीं अनर्थ',
टिक्कू जी को हुआ न उसके उस आश्वासन पर विश्वास,
चिन्ताकुल वे शेष महीने रहे भाग्य से बने उदास।

होते ही दिन पूर्ण शेष जब हुआ पुत्र घर में उत्पन्न,
देख स्वस्थ शिशु वा पत्नी को टिक्कू जी हो उठे प्रसन्न,
हुआ बोध उनको, करुणा थी हुई राम की उनपर सत्य,
क्योंकि ज्योतिषी का भविष्य था हुआ न पहले कभी असत्य।
एक बार सन् छत्तिस में जब आने वाला था भूचाल,
किया शीघ्र काश्मीर राज्य ने जनता को सचेत तत्काल,
भय-आकुल हो उठे लोग थे भावी खतरे से अत्यन्त,
टिक्कू जी की अपनी चिन्ता का न रहा था कोई अन्त।
छोटा-सा उनका मकान था पर वह था ऊँचा भरपूर,
डर उसके ही होने का था सबसे पहले चकनाचूर,
टिक्कू जी भयभीत काँपते पहुँचे शीघ्र राम के पास,
बोले वे है हाय! हमारा सबसे ऊँचा स्थान निवास।
निश्चित है वह ढह जायेगा आते ही पहला भूचाल,
करो हमारी रक्षा तुम इस राम आपदा से विक्राल,
कहा राम ने 'करें न चिन्ता आप रहें घर में जा शान्त,
कभी न क्षति हो सकती घर को! त्याग धारणा दें ये भ्रान्त'।
सोया था जब राम कुटी में बीती थी थोड़ी सी रात,
लगी काँपने धरा अचानक भीषण एक मचा उत्पात,
उधर लोग उन बाहर भागे छाया नभ धरती में शोर,
और राम था सोया सुख से अपनी कुटिया में इस ओर।

देख रहा था राम स्वप्न में वैसा ही भीषण भूचाल,
भाग रहे थे लोग आपदा से बचने होकर बेहाल,
काँप रहा था टिक्कू जी का घर, ढह जाएगा था स्पष्ट,
किन्तु राम था टेके उसपर अपना दक्षिण-पद-अंगुष्ठ।

दबा अंगूठे को देता जब अधिकाधिक घर उठता काँप,
जबकि स्वयं गहरी निद्रा में सोया था कुटि में वह आप,
कृपा राम की ही थी जिससे बचा भक्त, घर हुआ न चूर,
जबकि हुआ नुकसान घरों को और, मोहल्ले के भरपूर।

बेलगाँव का अट्ठावन में अक्कलकोट गया जब एक,
भक्त, साथ थे उसके आए उसी शहर के मित्र अनेक,
बैठा दल मित्रों का मन्दिर में करता प्रभु का गुणगान,
भक्ति भरे कीर्तन में उनको नहीं रहा अपना कुछ भान,।

बीत चुकी थी मध्य रात्रि पर अब भी था चालू सत्संग,
तभी पुजारी ने आकर की उनकी वह तन्मयता भंग,
कहा स्वयं उसने दत्तात्रय प्रकट हुए हैं थोड़ी दूर,
अगर आप चाहें तो जाकर लें प्रभु का दर्शन भरपूर।

सुनकर वह संवाद भक्त वे दर्शन की आशा में लीन,
निकल पड़े यात्रा पर तत्क्षण यद्यपि निशि थी चन्द्र-विहीन,
बीस मील था दूर वहाँ से तथा कथित प्रभु का वह स्थान,
और डाकुओं का उस पथ में छाया था आतङ्क महान।

कर पाया था मुश्किल से दल तय अभी न आधी भी राह,
तभी अचानक सुना डाकुओं का हा-हुल्लड़ उसने आह,
दिखीं मशालें जंगल में वा उठी सीटियों की आवाज,
किसी समय भी गिर सकती थी हमले की उस दल पर गाज।

भक्त राम का उस प्रसंग से घबराया मन में अत्यन्त,
लगा उसे अब दूर नहीं है अपने इस जीवन का अन्त,
तभी दाहिनी ओर अचानक देखा उसने सूक्ष्म शरीर,
चलता उसके साथ-साथ ही हृष्ट-पुष्ट निश्चिन्त सुधीर।

सिर उसका दृष्टव्य नहीं था, थी परिचित पर वह पदचाप,
और स्पष्ट था स्वयं राम ही हुआ प्रकट था अपने आप,
साथ रहा वह व्यक्ति भक्त के काफी अन्तर तक चुपचाप,
और स्पष्ट सुन रहा भक्त था साथ-साथ होती पद-चाप।

इस अनुभव के साथ-साथ ही हुआ डाकुओं का रव शान्त,
और कल्पना लूटमार की हुई सिद्ध उनकी सब भ्रान्त,
जैसे ही भीहड़ जंगल का किया इलाका दल ने पार,
हुआ राम अदृश्य, भक्त को देख हुआ आश्चर्य अपार।

यही भक्त था गया एक दिन मोटर में, मित्रों में साथ,
किसी कार्यवश अन्य गाँव में जहाँ हो गई उसको रात,
लौट रहे थे बैठ कार में मध्य रात्रि को जब वे मित्र,
निकल गई पथ में पहिए की हवा, हुई पर बात विचित्र।

पीछे से ट्रक एक आ रहा था गति से अत्यन्त महान,
रुका इशारे पर करने को हवा पम्प से उसे प्रदान,
हुई कार के पहिए की जब उस साधन से भरकर पूर्ण,
आगे ट्रक वह लगा दौड़ने लगा दाँव पर गति सम्पूर्ण।

दौड़ रहा था आगे ट्रक वह और लगी थी पीछे कार,
दोनों में से एक नहीं था हार मानने को तैयार,
उसी कार में आगे बैठे थे ड्राइवर, क्लीनर वा भक्त,
शेष मित्र थे पीछे बैठे होकर उस गति से अनुतप्त।

ट्रक में और कार में केवल था थोड़ा-सा अन्तर शेष,
तभी अचानक ट्रक वाले ने विवश लगाया अपना ब्रेक,
देख हुई ट्रक से अब टक्कर खो बैठा चालक औसान,
खोल द्वार क्लीनर ने चाहा कूद बचाए अपने प्राण।

भक्त बीच में बैठा था हो स्थिति से उस कर्त्तव्य विमूढ़,
तभी स्मरण उसको हो आया एक बात का आत्म निगूढ़,
कुछ पहले रुद्राक्ष राम ने दे रक्खे थे रूप प्रसाद,
थाम उन्हें मजबूत हाथ में किया राम को उसने याद।

और साथ ही दिया कार को मोड़ जोर से बाईं ओर,
रहा देखता चालक बैठा अब भी जो था भीति-विभोर,
टकराया उस ट्रक से मोटर का अगला यत्किन्चित भाग,
किन्तु रुकी वह और बच गए सभी लोग बिल्कुल बेदाग।

चमत्कार यह देख किसी को हुआ न उस स्थिति पर विश्वास,
जबकि मृत्यु का सभी पा चुके थे क्षण भर पहले आभास,
करते हैं रक्षा जिसकी भी प्रभु के बन्दे सन्त समर्थ,
नहीं विश्व की कर सकती है उनका कोई शक्ति अनर्थ।

सन् चौंतिस की घटना है यह दुर्गानाग स्थान के पास,
एक कुटी में इक्किस दिन का किया राम ने था उपवास,
यहीं राम ने किया संघटित काश्मीरी युवकों को साथ,
अनुशासन के साथ स्वास्थ्य का दिया उन्हें श्रेयस्कर पाठ।

वे सब छुट्टी के दिन मिलकर चढ़ते थे शिखरों पर दूर,
संकीर्तन के साथ सृष्टि का सुषमा-रस पीते भरपूर,
एक दिवस वे सब जा पहुँचे करते प्रभु का नामोच्चार,
अचल सुरेश्वर की चोटी पर विकट चढ़ाई करके पार।

हुआ वहीं सत्संग प्रेम से और बाद में स्वल्पाहार,
हुआ नीर निःशेष शीघ्र ही साथ भरमसों का दो चार,
किन्तु समय था गर्मी का वह लगी शीघ्र ही सबको प्यास,
सूखा था पर पर्वत सारा कहीं नहीं था पानी पास।

तभी राम ने देखा नीचे सघन एक था वृक्ष चिनार,
छाया, जल के लिए विकल सब शीघ्र उतरने लगे उतार,
सबसे पहले उतर चढ़ाई पहुँचा राम वृक्ष के पास,
उसके पीछे और मित्र भी जा पहुँचे भरते निःश्वास।

अद्‌भुत थी यह बात वहाँ भी कहीं न था कोई जल-पात,
किन्तु आ रही थी भीतर से भू के, जल की सी आवाज,
तत्परता से लगा हटाने राम वहाँ से पत्थर दूर,
देखा उसने वहीं वह रहा था जल का झरना भरपूर।

शीतल जल का आस्वादन कर हुई सभी की तृष्णा शान्त,
कहा किसी ने 'काश ! यहाँ पर होती 'डल' सी झील प्रशान्त,
तो हम सत्वर पैठ नीर में उसी स्थान पर करते स्नान,
हो जाती यह देह सर्वथा निर्मल, मिटती सर्व थकान।

कहा राम ने 'निहित स्नान में है शुचित का भाव प्रधान,
नहीं देह गीली करने से होते हम पावन अनजान,
इसीलिए तो शास्त्रों ने हैं कहे स्नान के पाँच प्रकार,
पावनता भी तभी साध्य है यदि हम रक्खें शुद्ध विचार।

पृथ्वी, मन, जल, वायु, अग्नि वा प्रज्ञा, अहंकार आकाश,
आठ वस्त्र ये त्याग सकें तो पा सकते हम आत्म-प्रकाश,
अतः शुद्ध यदि होना चाहो तो कर लो मानस को शून्य,
शुद्ध-ब्रह्म का एक भाव हो तत्व न मन में हो कुछ अन्य।'

सुने सभी ने कथित राम के आत्म-शुद्धि सम्बन्धी भाव,
इस नूतन परिभाषा का था पड़ा सभी पर बड़ा प्रभाव
गए वहाँ से वे फिर झरने पर करने निज तृष्णा शान्त,
पड़ी राम की दृष्टि प्रणाली पर, जिसका था खाली प्रान्त।

देख बिना शिवलिंग प्रणाली हुआ उसे आश्चर्य महान्,
लगा उसे यह निश्चित होगा किसी समय का देवःस्थान,
हो सकता है यवन-काल से इस घटना का हो सम्बन्ध,
तोड़ दिया हो लिंग किसी ने धर्म-भावना से हो अन्ध ।

इसी स्थान से नीचे सौ फुट नहर एक थी हाखन नाम,
जिसके नीचे कुछ दूरी पर था निशांत का रम्य विराम,
अगले ही पल वहाँ पहुँच कर किया भ्रमण करना आरम्भ,
वहीं एक शिवलिंग पड़ा था बहुत बड़ा, हो मानो स्तम्भ ।

काला था शिवलिंग पाँच फुट चौड़ा लगभग साढ़े तीन,
देख लिंग की वहाँ दुर्दशा हुआ राम चिंतन में लीन,
लगा राम को अकस्मात ही करे यहाँ का जीर्णोद्धार,
लिंग-स्थापना उस प्रणालि पर करे, किया उसने निर्धार ।

कहा राम से मित्रों ने भी यही स्थान है गोपीतीर्थ,
और वहाँ के मुसलमान भी इसको कहते हैं 'गुपतीर्थ',
किन्तु यहाँ आते डरते हैं वे मुसलमान भी अत्यन्त,
उनका, आए थे जो पहले हुआ बावले होकर अन्त ।

दुष्ट न फिर भी करने देते और किसी को यहाँ निवास,
हुए आज तक सभी साधुओं के रहने के त्रिफल प्रयास,
किया राम ने वहीं विचरने का मन में पक्का निर्धार,
ताना छोटा सा तम्बू भी वहाँ स्नेहियों ने दो चार ।

वहीं पास में कुण्ड एक था पानी का पक्का चौकोर,
बना वहाँ था एक मोखला जल के भीतर गिरि की ओर,
इसी मोखले से रिसता था नीर कुण्ड में उस दिन रात,
किन्तु कुण्ड वह कभी न भरता बना रहस्य सा था अज्ञात ।

लगा विचरने राम वहीं पर शिष्य बालजी भी थे साथ,
मुसलमान थे चिंतित सारे करे वहाँ कैसे संधात
एक दिवस कुछ यवन प्रतिष्ठित जा पहुँचे उस पावन धाम,
देख राम को बैठ गए वे करके आदरपूर्ण सलाम ।

कहा उन्होंने चिंतित होकर है यह स्थल अत्यन्त भयान,
जो भी आकर रहे यहाँ पर विवश कर गए वे प्रस्थान,
इस पानी के स्पर्श मात्र से पागल हो जाता इन्सान,
क्योंकि यहाँ पर सदा विचरते पाक हमारे पीर महान ।

अतः उचित है यही आप भी चले यहाँ से जाएँ दूर,
फिर भी तो जाना ही होगा हो विपत्तियों से मजबूर',
कहा राम ने 'बिल्कुल सच है जो भी फर्माते हैं आप,
यहाँ न रह सकता है कोई थोड़ा भी हो जो नापाक।

किन्तु राम का पवित्रता से पूर्ण यहाँ है रहा निवास,
और उसे है पावन आत्माओं पर भी इतना विश्वास,
जो पवित्र है आत्मा चाहे हो ऋषि वह अथवा हो पीर,
नहीं तनिक भी हो सकती है उसको बाधा, या तकलीफ।

अगर पाक हों वहाँ विचरते चाहे कितने भी इन्सान,
नहीं कभी भी हो सकता है किंचित भी उनका नुकसान,
उनके सम्मुख उन यवनों की गली न जब थोड़ी भी दाल,
चले गए वे निरुत्साह हो बीत गया यों ही कुछ काल।

एक दिवस फिर से आ धमके मुसलमान कुछ होकर रुष्ट,
'यहाँ हमारी कब्र-पीर है' कहा उन्होंने बिल्कुल स्पष्ट,
बोल पड़ा वह, यदि यह सच है तो यह भी है निश्चित सत्य,
पीर नहीं चाहेंगे आकर करें यहाँ पशु विष्ठा नित्य।

इससे तो अच्छा है कोई रहे यहाँ पर आकर व्यक्ति,
पाक सर्वथा, होगी उससे ही उस आत्मा की भी तुष्टि
और यहीं यदि कब्र बनी है आप जिसे चलते हैं मान,
क्यों न आप सब आते हैं फिर दर्शन करने को इस स्थान।

इस प्रणालि से विदित यही है है निश्चित यह देवःस्थान,
नहीं कब्र है यहाँ आप हैं लगा रहे जिसका अनुमान,
झूठ कथन यदि मेरा मानें तो रक्खे हैं ये औजार,
खोद भूमि को आप देख लें करें न बिल्कुल सोच-विचार।

यदि मिल जाए कब्र आपको बनी यहाँ कोई भी पास,
तो मैं बनवा दूँगा मस्जिद यहाँ, करें मुझपर विश्वास'
जँची राम की बात सभी को किया उन्होंने पूर्ण प्रयास,
पर न कहीं भी वहाँ कब्र थी लौट पड़े वे लोग उदास।

यहीं देखकर शेर एक दिन उठे बालजी भय से काँप,
गए राम के पास दौड़कर रहे जोर से थे वे हाँफ,
कहा राम ने 'व्यर्थ डरो मत नहीं तुम्हें सकता वह मार,
जैसे आया है जाएगा अपनी राह शेर खूँखार'।

एक दिवस तम्बू के आगे खटिया पर सोया था राम,
और बालजी जगन्नाथ भी वहीं कर रहे थे आराम,
स्वप्न-मग्न था राम उस समय होगा चार बजे का काल,
देखा एक विप्र ने आकर उठा दिया उसको तत्काल।
आगे आगे विप्र चला वह निकट उसी झरने की ओर,
राम चला ब्राह्मण के पीछे मंत्र-मुग्ध सा आत्म-विभोर,
झरने के मोखे के भीतर किया विप्र ने शीघ्र प्रवेश,
अपने पीछे अन्दर आने का देकर उसको आदेश।

लेट पेट के बल दोनों ही चले मोखले में कुछ दूर,
दिखीं जहाँ पर उन्हें सीढ़ियाँ नीचे जाने को भरपूर,
उन्हीं सीढ़ियों के सम्मुख था एक बड़ा समतल मैदान,
बीच उसी के खड़ा जहाँ था दिव्य महल सा एक महान।
पाँच महल के दालानों से गुजरा राम विप्र के साथ,
पर दालान घटा आया जब ठहर गया वह विप्र हठात्,
बाईं ओर एक था कमरा संगमरमर का दिव्य महान,
वहीं दक्षिणी विप्र एक था शिव-पूजा में लीन सुजान।

उस ब्राह्मण की ओर वहीं से अंगुली से करके निर्देश,
प्रथम विप्र ने कहा ठहर 'में कर न सकूँगा यहाँ प्रवेश,
किन्तु आप बढ़ जाएँ आगे इस ब्राह्मण की पिछली ओर,
द्वार बना है उसमें होकर बढ़ें आप आगे की ओर।
वहाँ आप सम्मुख पाएँगे दिव्य एक दालान विराट्,
देख रहे हैं परमहंस प्रभु वहीं आपकी बैठे बाट'
सुना राम ने उस कमरे में पूजारत ब्राह्मण का गान,
देख राम को किया विप्र ने उसको आदरयुक्त प्रणाम।
कर निर्देश कहा ब्राह्मण ने 'कृपया भीतर करें प्रवेश,
परमहंस श्री रामकृष्ण का यही आपको है आदेश,
जाकर सत्वर उस प्रकोष्ठ में देखा उसने दृश्य महान्,
व्याघ्रचर्म पर परमहंस थे लेटे रामकृष्ण भगवान्।
मात्र अस्ति निःशेष देह थी पर मुख मण्डल था द्युतिमान,
'ॐ नारायण' कहकर उसने सादर उनको किया प्रणाम,
परमहंस श्री रामकृष्ण ने देख उसे करते प्रणि पात,
उठकर कहा 'तुम्हारी ही मैं देख रहा था अब तक बाट।

आ जाओ यह कार्य एक तुम ही कर सकते हो सम्पन्न,
दे रक्खी है कार्य-सिद्धि की शक्ति तुम्हें प्रभु ने अवछिन्न,
करो सहज यह कार्य पूर्ण तुम है तुमको मेरी आशीष,
देखो बाहर तृतीय कक्ष में जन एकत्रित हैं उद्‌भीत।

तुम उपासना शैव-शक्ति की वतलाओ उनको विधि युक्त,
और स्थापना शिव-पिण्डी की करो यहाँ होकर उन्मुक्त,
वन्दन कर श्री रामकृष्ण को राम गया जनता के पास,
जहाँ भीड़ के कारण जन थे खो बैठे निज होश-हवास।

दिया राम ने उनके सम्मुख ओजस्वी अपना व्याख्यान,
शिव-उपासना का समझाया लोगों को उसने महिमान,
काँप उठा जब करतल ध्वनि से जनता के, सम्पूर्ण दिगन्त,
जाग उठा तब राम अचानक हुआ स्वप्न का था उस अन्त।

जाग नींद से लगा देखने राम भीड़ को उस सम्भ्रांत,
किन्तु वहाँ तो जगन्नाथ थे और वालजी बैठे शान्त,
उन दोनों को पूछा उसने हुई कहाँ जनता अदृश्य,
जो अब तक एकाग्र भाव से खड़ी सुन रही थी वक्तव्य।

सुनते ही वह प्रश्न राम का हुए भक्त दोनों हैरान,
तभी अचानक हुआ राम को अपने स्वप्न-भंग का भान,
उस दिन था इतवार सुबह से आने लगे भक्त उस स्थान,
मध्यानोत्तर तक दो सौ ले लगभग पहुँच गये मेहमान।

घन चिनार की शीतल छाया में चटाइयों पर आसीन,
हुए भक्त सब राम सामने बैठा भाषण में तल्लीन,
दिया राम ने उनके सम्मुख शिव उपासना पर वक्तव्य,
कहा राम ने श्रोताओं से तुम हो शैव उपासक भव्य।

और तुम्हारे शिव की यह स्थिति पड़े वहाँ नाले के ठौर,
किन्तु न तुमको सोच जरा भी हाय मनुष्यों के सिरमौर,
है धिक्कार तुम्हें यदि तुमको नहीं देवता पर अभिमान,
जीवित होकर भी निःसंशय तुम हो सारे प्रेत समान।

ओजस्वी उसके भाषण से जागा उन सबमें उत्साह,
चला स्थापना करने शिव की साथ राम के लोक-प्रवाह,
किन्तु उठाना शक्य नहीं था, था भारी शिवलिंग महान्,
दुष्कर था अत्यन्त और भी ले जाना ऊपर के स्थान।

निरुत्साह जब हुए भक्तजन गया राम शिवजी के पास,
बाहुपाश में भरा लिंग को जहाँ खड़े थे लोग उदास,
मन ही मन कर उठा प्रार्थना दो मुझको बल मेरे देव,
यदि चलना हो ऊपर अथवा बन जाओ हलके स्वयंमेव।

लोगों से फिर कहा राम ने यदि हिल जाए मुझसे लिंग,
वहन उसे फिर कर सकते हैं दस-पन्द्रह जन मिलकर संग,
व्यंग भाव से बोली जनता हमें शर्त है यह स्वीकार,
उधर राम ने कर प्रभु चिंतन और शक्ति का कर निर्धार।

दिया स्फूर्ति से झटका सत्वर गिरा लिंग तत्काल खड़ाक्,
रहे देखते मंत्र मुग्ध से लोग सभी वह दृश्य अवाक्,
मिलकर सबने वहन किया तब उसे पहाड़ी पर तत्काल,
पास कुण्ड के रक्खा सबने मिल, प्रणालि पर लिंग विशाल।

यहीं राम के तम्बू सम्मुख एक खड़ा था ऊँचा वृक्ष,
जिसकी शाखा से होता था ओझल सारा दृश्य समक्ष,
अतः राम ने कटवाई जब झुकी सामने वाली डाल,
अर्राकर वह गिरी अचानक घायल भक्त हुए नन्दलाल।

उनपर शाखा गिरने से था हुआ जाँघ पर भीषण घाव'
किन्तु राम के सतत ओम् का प्रत्याशित ही हुआ प्रभाव,
बिना चिकित्सा के ही घायल हुआ शीघ्र ही बिल्कुल स्वस्थ,
देखा सबने ॐ शक्ति का अद्भुत वह सामर्थ्य प्रशस्त।

इसी कुण्ड के पास एक दिन बैठा था वह करने ध्यान,
तभी अचानक उसने देखा एक भयानक दृश्य महान्,
प्रकट हुआ पानी के ऊपर रक्तसिक्त मानव का हाथ,
लगा नाचने उसके सम्मुख अतिशय भीषणता के साथ।

हुआ न विचलित देख दृश्य वह बोला स्वर में भर आदेश,
'हो जाओ तुम खण्ड' जिसे सुन हुआ न पंजा वह निःशेष,
किन्तु हुए दो टूक हाथ के टपक रहा था उनसे रक्त,
कहा रामने पुनः 'खण्ड हो।' दृष्टिपात कर उनपर तप्त।

इतना कहते ही पंजों के हुए अचानक अगणित खण्ड,
किन्तु धारणा निर्भयता पर रही राम की अचल अखण्ड,
पुनः 'खण्ड हो!' कहते ही वे टूक हुए सब अन्तर्धान,
तांत्रिकता से मुक्त सर्वथा हुआ तभी से है वह स्थान।

यहीं बालजी के खेमे में एक रात घुस आया चोर,
उठा बिस्तरा भाग गया वह किया बालजी ने जब शोर,
उस विकृति को दूर हटाने हुआ राम जप में तल्लीन,
देखा उसने नहीं दैव का कार्य एक भी न्याय विहीन।

उसके बेटे का ही बिस्तर पड़ा शाम से था उस ठौर,
माल पराया जान पुत्र को अपने ही ले भागा चोर,
कुछ ही दिन के बाद अचानक हुए चोर के तन पर घाव,
पापी को उसकी ही आत्मा दिखा रही थी पाप-प्रभाव।

विवश राम के सम्मुख आया होकर पीड़ा से वह त्रस्त,
लगा लोटने श्रीचरणों पर आत्म-ग्लानि से अस्ताव्यस्त,
देख दुर्दशा उसकी भीषण उठा राम का हृदय पसीज,
दी आशीष हुआ मुक्त वह पीड़ा से दुखिया नाचीज।

बर्फानी ठण्डक में ठण्डे पानी से नित करके स्नान,
हुआ एक दिन सहसा उसपर भीषण खाँसी का संधान,
खाँसी थी ही विकट साथ ही हो आया उसको ज्वर तेज,
फिर भी स्नान-ध्यान को तजकर किया न किंचित भी परहेज।

देख राम का कष्ट भयंकर किन्तु सदा मुख पर मुस्कान,
लाला सालिग्राम ले गए विवश राम को अपने स्थान,
रहकर पन्द्रह दिवस वहाँ पर गया बाद में वह हरद्वार,
और वहाँ से स्वर्गाश्रम में कर पावन गंगा को पार।

माण्डुक्याश्रम छोड़ वहीं पर विचर रहे थे योगानन्द,
पुनः राम से मिलकर सहसा हुआ उन्हें अतिशय आनन्द,
बातचीत में व्यस्त हुए थे दोनों योगी ही नित्तान्त,
तभी कोठरी के कोने में वृद्ध एक आ बैठा शान्त।

हुआ राम की बातों का उस सज्जन पर अत्यन्त प्रभाव,
चलें अहमदाबाद साथ वह रक्खा उसने नम्र सुझाव,
माह दिसम्बर में जा पहुँचा राम वृद्ध के संग गुजरात,
पथ में गाड़ी में कह डाली उस सज्जन ने अपनी बात।

वह वकील था समृद्धशाली था उसका पूरा परिवार,
शीलवान थी दो कन्याएँ और पुत्र करते व्यापार,
जैन-धर्म का अनुयायी था वह सारा का सारा परिवार,
देख राम का प्रभु-आराधन हुआ उसे आश्चर्य अपार।

ज्येष्ठ वीरबाला दुहिता ने पूछा, 'रह न सकी वह मौन,
'आप प्रार्थना करते जिसकी बतलाएँ वह प्रभु है कौन ?,
ईश्वर है यदि बात सत्य यह क्यों न प्रकट वह होता पास,
और अगर वह प्रकट न होता रक्खें उसपर क्यों विश्वास।'

कहा राम ने हँसकर उससे 'क्या समझूँ मैं इसका अर्थ,
दृश्यमान जो तत्व नहीं है उसको तुम कहती हो व्यर्थ, ?
देख वीरता किसी ध्यक्ति की तुम उसको कहती हो शूर,
देख मगर सकती हो तुम क्या उसकी निर्भयता का नूर।

नहीं, किन्तु फिर भी करती हो उसका वन्दन कहकर शूर,
सहज प्रभावित उसकी निर्भय कृति से होकर तुम भरपूर,
क्या निर्भयता विषय लोचनों का हो सकता, बोला सत्य ?,
फिर भी तो अस्तित्व अभयता का अखण्ड है शाश्वत नित्य।

इसी भाँति ईश्वर आँखों की वस्तु नहीं है अपितु ललाम्,
उसकी लीला का पा सकते जग में हम पल-पल अविराम्,
प्रभु है अनुभव-गम्य सृष्टि में मन-मन्दिर में उसका वास,
है अस्तित्व हमारा भी तो उस सत्ता का ही आभास।

सब कहते हैं 'मैं हूँ' 'मैं हूँ' पर पूछो यदि तुम हो कौन,
नाम बता इङ्गित करते तन हो जाते हैं वे सब मौन,
किन्तु देह मानव का नश्वर केवल है मिट्टी का साज,
वह चेतन है जब तक उसमें करता है चैतन्य निवास।

उसी एक चेतन के कारण सक्रिय है इन्द्रिय-व्यापार,
विलग देह से उसके होते ही तन बन जाता है भार,
यही चेतना मानव-तन की है मानव का 'मैं' नित्तान्त,
और इसी का करता रहता अनुभव वह है हरदम शान्त।

इसीलिए तो मानव रूपता पाने को सत् चित् आनन्द,
निर्भयता, संघटन, शान्ति जो प्रभु-गुण-धर्मों का निष्पन्न,
ये गुण जिसमें निहित उसी से यदि रक्खे मानव सम्वन्ध,
तो निश्चित उसमें जागेगा इन गुण-धर्मों का आनन्द।

इन गुण-धर्मों का अपने में नित करते रहना संचार,
यही प्रार्थना का निश्चित है हेतु सतत तन का उद्धार,
यदि तुम चाहो बल, निर्भयता और साथ पाओ आनन्द,
तो तुम जोड़ो इन्हीं गुणों की विधि से तन-मन का सम्बंध।

हुआ राम की सूझ-बूझ से उन सबको प्रभु पर विश्वास,
लगे प्रार्थना करने वे सब नित्य बैठकर उसके पास,
मेहता जी के छोटे लड़के को था एक भयंकर रोग,
'मरा, मरा मैं' कहकर करता रहता था वह प्रतिपल शोक।
इस मानस-विकृति से उसकी देह बन गई थी कंकाल,
प्रायः समा चुका था रोगी कुटिल काल के गाल कराल,
एक दिवस अपने कमरे में सुख से जब सोया था राम,
और साथ वाले कमरे में थे मेहता करते आराम।
तभी अचानक सुनी राम ने एक भयानक-सी चीत्कार
'हाय ! मरा मैं ! हाय मरा मैं ! सुनते ही वह आर्द्र पुकार,
आ पहुँचा कमरे के बाहर राम अचानक चिन्ताक्रान्त,
जहाँ बताया मेहता जी ने उसको निज दुख का वृत्तान्त।
कहा उन्होंने कर देखें हैं हमने सारे ही उपचार,
किन्तु हुए सब यत्न विफल ही कर्मों से बैठा हूँ हार,
होना होगा जो किस्मत में वही अन्त में होगा राम,
करें न चिन्ता आप व्यर्थ में करें आप जाकर आराम।
मेहता जी का दुःख देखकर उठा राम का हृदय पसीज,
बोला 'प्रभु की इच्छा हो तो हो जाएगा ठीक मरीज'
इतना कहकर आ लेटा वह अपने बिस्तर पर ध्यानस्थ,
रहा सोचता उसी मर्ज पर प्रातः तक वह होकर त्रस्त।
प्रातः उठकर नित्य कर्म कर जब बैठा वह करने ध्यान,
बैठाया रोगी को उसने पास ॐ का करने ध्यान,
कहा राम ने रोगी से वह करें ॐ का सततोच्चार,
और धारणा, आनन्दी हूँ निर्भय हूँ, बलवान अपार।
पूर्ण स्वस्थ हूँ और निरोगी सुदृढ़ देह है, नहीं विकार
सुनते ही यह बात राम की रोगी सहसा उठा पुकार,
कहाँ सुदृढ़ हूँ, मरणोन्मुख मैं मर जाऊँगा निश्चित हाय,
नहीं बचा सकता है कोई मुझे व्यर्थ हैं सभी उपाय।
दृढ़ता से जब कहा राम ने 'करो कहा जितना चुपचाप,
और गड़ा दी दृष्टि साथ ही उसपर, उसकी मनिषा भाँप,
लगा बड़बड़ाने रोगी वह मुँह से कुछ बातें तत्काल,
लिख डाली जो सभी राम ने कागज पेंसिल शीघ्र निकाल।

डेढ़ माह के साहचर्य से साथ राम के मेहता-पुत्र,
हुआ स्वस्थ, फिर हुई बाद में उसकी शादी भी अन्यत्र,
इसी बीच श्री लंगर जी से हुई राम की सहसा भेंट,
कहा उन्होंने आश्रम में थी हुई पण्डितों में मुठभेंड।

अब न रही थी उस आश्रम की शुचिता किंचित भी निःशेष,
फैल चुका था वहाँ भयानक उसके भक्तों में विद्वेष,
अतः राम जब सन् छत्तिस में लौट पड़ा फिर से काश्मीर,
और रहा लंगर जी के घर, तब आकर भक्तों की भीड़।

लगी मनाने उसे करे वह फिर से आश्रम को आबाद,
किन्तु राम ने सुनी न उनकी हुआ उन्हें अत्यन्त विषाद,
बोला वह 'विद्वेष सरीखी पातक कोई वस्तु न अन्य,
उसे टालने का मेरा है निश्चित जानो भाव अनन्य।

उसे हटाने को कर सकता मैं न सभी कुछ ही परित्याग,
अपितु राम इस पंचभूत तन का भी कर सकता है त्याग,
आप समझते हैं उस स्थल पर किया राम ने है अधिकार,
दूर उसी भ्रम को करने का अटल राम का है निर्धार।

आप सम्भालें अब आश्रम को देखें उसका कार्य प्रबन्ध,
देख स्थान की उन्नति होगा सचमुच ही मुझको आनन्द,
किन्तु राम यह एक लक्ष पर नहीं चलाएगा दो बाण,
निकल पड़ा जो मुँह से वह ही बन जाता संकल्प महान।'

लौट गए मुँह लटकाए सब भक्त-प्रवर उसकी सुन बात,
पा न सकी वह भूमि दुबारा चरण-स्पर्श उसका अभिजात,
गोपी तीर्थ स्थान का मन्दिर और धर्मशाला है शेष,
किन्तु सभी श्रीहीन आज हैं मानो स्मृतियों के अवशेष।

वह समाधि विद्वेष, स्वार्थ की अब भी सबको है दृष्टव्य,
जहाँ कभी चैतन्य विचरता वीराना छाया है भव्य,
किन्तु वहाँ का पत्थर-पत्थर अब भी करता रहता घोष,
'स्वार्थ और विद्वेष मनुज के हैं अत्याधिक घातक दोष।

अपनी, अपने देश, जाति का यदि सचमुच चाहे उत्थान,
तो पहले विद्वेष-स्वार्थ से छुटकारा पाए इन्सान',
सन चौंतिस में किया राम ने जम्मू के जंगल में वास,
रोज भ्रमण पच्चीस मील कर पहुँच किसी बस्ती के पास।

रात काटता यदि मिलता घर कोई भी पण्डित का एक,
ओर दूसरे दिन फिर यात्रा का क्रम चलने लगता शेष,
यही कार्यक्रम जारी था सन् उन्नत्तीस से सन् चौंतीस,
रहा न टिक कर राम कहीं भी किया घूमकर काल व्यतीत।

इसी भ्रमण में देखा उसने ख़ू का नयन-मनोहर स्थान,
रहा जहाँ करते थे पहले जीवन साहब सिद्ध महान्,
आजीवन आँखों पर पट्टी रहे सिद्ध वे बाँधे नित्य,
अन्त समय वे दृग-निरोध से ही न हो सके बन्धन-मुक्त।

अन्तिम बेला के आते ही जान कामना का यह मर्म,
बोले शिष्यों से न चुका है अभी हमारा पूरा कर्म,
मेरे मरते ही देखेंगे आप यहाँ सब कीड़ा एक,
मार उसे दें जिससे मेरी कट जाए योनी अवशेष।

पास-जोजला से कर्द्रू वा करगिल से होकर लद्दाख,
भ्रमण-काल में मिला यहीं पर वासुदेव साण्डू का साथ,
साथ उन्हीं के घोड़ें पर चढ़ चला राम आगे सानन्द,
रुका डाक-बँगले में पथ में साण्डू जी का देख प्रवन्ध।

जैसे ही वह हुआ वहाँ पर अपने आसन पर आसीन,
देखा दृश्य धूपवन आश्रम था ज्वाला के हुआ अधीन,
अगले ही दिन प्रातः उसने किया धूपवन को प्रस्थान,
देखा सचमुच राख हुआ था जलकर आश्रम का सामान।

'दिव्य-कवच', 'संसार-दुर्दशा' कई और भी ऐसे ग्रन्थ,
जो न प्रकाशित हो पाये थे गए अग्नि के पावक-पन्थ,
सन् अड़तिस में रामेश्वर को किया राम ने जब प्रस्थान,
पाँच रुपये थे किन्तु राह में और जनों ने किए प्रदान।

नहीं देखने वाला होता जिसका कोई भी श्रीमंत,
उन भक्तों की स्वयं व्यवस्था करता रहता है भगवंत,
रामेश्वर से लौट राम ने किया रुद्रवन्ती पर वास,
भक्त-प्रवर आनन्द कौल का जहाँ बना था स्थान-निवास।

शाह अहमदाबाद नगर के इसी बीच पहुँचे उस स्थान,
और सभी ने पहलगाँव को किया वहाँ से ही प्रस्थान,
एक फ्लैट में ठहरे जाकर पहलगाँव में वे तत्काल,
और दूसरे में ठहरे थे लुधियाने के कुन्दनलाल।

नित्य नियम से देख साथ में होता रहता है सत्संग,
हुई अचानक रुचि उनको भी करें राम का वे भी संग,
क्या होता है करने से जो आप बताते प्राणायाम,
पूछ राम से लिया उन्होंने करने शंका का निर्वाण।

रोग उन्हें थे कई भयंकर जिनसे रहते थे वे त्रस्त,
कर देखी थी सभी चिकित्सा शेष न कोई भी अन्यत्र,
सन् छत्तिस में लुधियाने को गया राम उनके ही साथ,
प्लाइवुड कपड़े की थी उनकी वहीं मिलें दोनों विख्यात।

पति-पत्नी में किन्तु परस्पर थी अनबन भीषण, निरुपाय
और कहीं जाकर रहने का लगा सोचने राम उपाय,
कुन्दन लाल अनुज का भी था उसी शहर में एक मकान,
मिला इसी छोटे से घर को राम–कुटी होने का मान।

सेठ सिंघानिया वृजमोहन ने तिरतालिस ईस्वी में एक,
वहीं अलग बनवाया आश्रम रम्य राम की सुविधा देख,
तुलसी-वाटिका कहलाती जो यही कुटी सर्वत्र प्रसिद्ध,
सभी जाप, सत्संग, साधना-हुए इसी आश्रम में सिद्ध।

कई पर्व पच्चीस साल तक हुए यहाँ पर हैं सम्पन्न,
और मिला शत–शत लोगों को शुचिर्भूत मन्त्रों से अन्न,
एक बार जो आया लौटा पाकर मन वान्छित वरदान,
और साथ ही लेकर जीवन का मानव के ध्येय महान।

देश-विभाजन के अवसर पर विस्थापित लोगों के काज,
इस आश्रम ने ताने तम्बू कई, किन्तु जो विस्मृत आज,
किए राम ने कई यहाँ पर सतत–धारणा के सत्संग,
भौतिक जीवन में प्रभु-चिन्तन का भरने को अनुक्षण रंग।

यहीं एक महिला को सहसा हुआ अचानक था क्षय-रोग,
देख अवस्था भीषण उसकी आशा छोड़ चुके थे लोग,
खाँसी के ही साथ उलटकर आने लगता था जब रक्त,
भर जाता था पात्र क्षणों में और वेदना होती शक्त।

किन्तु सञ्जीवनी देवी जी सचमुच हैं अपने में धन्य,
छोड़ राम का एक सहारा नहीं किसी को जाना अन्य,
साहचर्य से सतत राम के और कृपा कर उसकी प्राप्त,
हुआ रोग निःशेष सर्वथा मिला स्वास्थ्य उनको पर्याप्त।

देख कष्ट उनका भीषण वह या गत जन्मों का सम्बन्ध,
दिया राम ने अपने जीवन का हिस्सा उसको सानन्द,
कर सकते हैं चाहें तो ये प्रभु के बन्दे दिव्य महान,
अपनी इच्छा से मरणोन्मुख किसी व्यक्ति को जीवन-दान।
वे समर्थ होते हैं लेकिन विधि-विधान का रखते ध्यान,
इसीलिए करते हैं जब भी करते अपनी आयु प्रदान,
चमत्कार यह देख राम का रहे लोग सबके सब दंग,
लगे चाहने सभी राम से कृपा राम की मिले अखण्ड,
प्रेमनाथ जी को इसपर भी नहीं हुआ पूरा विश्वास,
अतः राम ने उन्हें कराया दिव्य-शक्ति का जब आभास,
लगे देखने दीप्ति सर्वदा और हुए भय से आक्रान्त,
विकट भूख से त्रस्त हमेशा रहते वे पागल से भ्रान्त।
वे अधिकारी थे न शक्ति के किन्तु राम को कर मजबूर,
शक्ति-पात के बाद सोचने लगे शक्ति हो कैसे दूर,
हुई न उनको सह्य शक्ति जब और देख उनका अनुरोध,
किया राम ने शक्ति संवरण हुआ उन्हें तब सत्य-प्रबोध।
वृजमोहन की दुहिता पुष्पा करती थी उसका सब काम,
मिला इसी का उसे एक दिन अवचित समुचित दिव्य इनाम,
औरों के ही साथ राम के बैठ गई वह करने ध्यान,
सुख-समाधि में रहा न उसको बड़ी देर तक अपना भान।
हुआ समाधि में उसको दर्शन राम, लखन, सीता का दिव्य,
राम-कृपा से हुई शीघ्र ही सफल भावना उसकी भव्य,
लुधियाने के इस आश्रम में तेरह कोटि हुआ था जाप,
प्रतिध्वनित आश्रम तृण-तृण से होता रहता था जो आप।
माण्डे जी के एक अमरिकी जब पहुँचे कुटिया में मित्र,
मंत्र-ध्वनि सुन बिना व्यक्ति के लगा उन्हें वह काण्ड विचित्र,
समझे वे वह स्थान पिशाचों से बाधित है निःसन्देह,
अगर नहीं तो मंत्र-ध्वनि कर सकता कैसे व्यक्ति विदेह।
किया राम ने यहीं चवालिस में महान जग मङ्गल यज्ञ,
क्षुब्ध विधर्मी जिसके कारण हुए वहाँ के सब जन अज्ञ,
समझ रहे थे वे जन सारे उस प्रदेश का वह सब भाग,
बँटवारे में बन जायेगा अन्य देश का अन्तर्भाग।

काश्मीर में जब उन्नीस सौ बयालिस में पड़ा अकाल,
बाँट दिया चावल आश्रम का जनता को उसने तत्काल,
स्वयं रहा वह बिना अन्न के जल पीकर पूरे दिन सात,
किन्तु एक वृद्धा ने आकर भोजन उसको दिया हठात्।

कर न रहा था अन्न ग्रहण वह और दुखी थी वृद्धा स्पष्ट,
बिना अन्न के देख राम को उसे हो रहा था अति कष्ट,
हुआ न कहने पर भी भोजन करने को जब वह तैयार,
वहीं बैठकर वृद्धा ने भी छोड़ दिया अपना आहार।

सुनते ही वात्सल्यपूर्ण वह वृद्धा का दृढ़तर संकल्प,
लिया राम ने भावाकुल हो उस देवी से भोजन अल्प,
किन्तु राम ने कहा न होगा केवल यह भारत से भिन्न,
अपितु रहेगा इसी प्रान्त का लुधियाना यह अङ्गअभिन्न।

और स्थापना हवन-कुण्ड की वहीं राम ने कर सम्पन्न,
अपनी निर्भयता से जन में कर दी राष्ट्रीयता उत्पन्न,
इक्कीस दिन में महायज्ञ वह हुआ कुशलता से सम्पूर्ण,
और बाद में हुआ वचन भी भावी सम्बन्धी का पूर्ण।

जप, आहुति, सामग्री, भोजन, भाग यज्ञ के थे ये चार,
भिन्न-भिन्न दल जिनका करते आयोजन कर मंत्रोच्चार,
एक बार जब धारवाड़ में राम गया देने व्याख्यान,
जिसको सुनने वहाँ नगर के आए थे शिक्षक विद्वान।

श्रोताओं में आठ छात्र थे वैज्ञानिक वा युक्ति प्रवीण,
लगी राम की बातें उनको भावुकतामय तर्क विहीन,
बोले वे यदि है ईश्वर तो यहीं दिखा दें उसको आप,
हमें अपेक्षा है प्रमाण की बोले वैज्ञानिक चुपचाप।

कहा राम ने हँसकर उनसे नहीं बताता क्या विज्ञान,
दो गैसों के सम्मिश्रण से बन जाता है जल श्रीमान,
यह भी तो विज्ञान बताता भरा उन्हीं से है यह कक्ष,
क्यों न आप फिर उनके मिश्रण से कर देते जल प्रत्यक्ष।

बोले वे 'निश्चित हो सकता यह प्रयोग यन्त्रों से सिद्ध,
चल प्रयोगशाला में देखें चाहें तो अपने संनिद्ध;
'इसी भाँति' वह बोला 'दर्शन यदि चाहते प्रभु का आप,
तो प्रयोगशाला में मेरे भी न भला क्यों आएँ आप'।

छात्र आठ थे पर उनमें भी केवल श्री कुलकर्णी एक,
पहुँचे लुधियाने में सत्वर परख सत्य की करने नेक,
उन्हें राम ने सम्मुख बैठा किया शक्ति का उनपर पात,
आत्मा के उस सूक्ष्म स्पर्श से पुलक उठे उनके सब गात।

हुआ रीढ़ में स्पन्दन सहसा जाग उठी कुण्डलिनी शक्ति,
नहीं उन्होंने की पर जिद से अपने अनुभव की अभिव्यक्ति,
शक्ति-पात वह किया राम ने लगातार उनपर दिन तीन,
वह असह्य जब हुआ, तरुण वह पछतावे से बनकर दीन।

लगा माँगने क्षमा याचना स्वीकृत कर अपना अपराध,
उमड़ पड़े आँखों में आँसू उसे वेदना हुई अगाध,
विदित राम को पहले ही था उसके अन्तरतम का हाल,
देख रहा था लेकिन कब तक सच को मानव सकता टाल।

राम-कृपा से कुलकर्णी ने देखा देवी को साक्षात्,
हुई ध्यान में प्रकट भगवती जगज्जीवनी माँ विख्यात,
वस्त्र नहीं थे तन पर उसके ज्योतिर्मय थी सारी देह,
पर त्रिशूल थी लिए हाथ में त्रिपुर-सुन्दरी निःसन्देह।

उस त्रिशूल से कुलकर्णी पर देवी ने जब किए प्रहार,
कभी कण्ठ पर, कभी बाँह पर हुआ युवक भयभीत अपार,
कुलकर्णी को विदित नहीं था इस अद्‌भुत् अनुभव का मर्म,
किन्तु राम ने उन्हें बताया पूर्व-जन्म का उनका कर्म।

वे साधक थे तन्त्र-मार्ग के त्रिपुर-सुन्दरी पर अनुरक्त,
इसीलिए तो बिना वस्त्र के हुई भगवती सम्मुख व्यक्त,
मुक्त अविद्या से करने ही और काटने मल का भार।
हो प्रसन्न साधक पर अपने किए भगवती ने थे वार।

लिंग विस्मृरण आवश्यक है शक्ति-साधना में नित्तान्त,
तन के आकर्षण से साधक प्रायः है बन जाता भ्रान्त,
उचित उसे है तन से ऊपर उठे साधना में पर्याप्त,
तभी भगवती में माता का कर सकता वह दर्शन प्राप्त।

अगर नहीं तो सुप्त वासना ही देगी उसका पथ रोक,
फिसल पड़ेगा वह साधन से करे बाद में चाहे शोक,
मिले ध्यान में कुलकर्णी को ज्योतिर्मय हो होकर मंत्र,
समझाया सुलझा सुलझाकर उन्हें राम ने जिनका तन्त्र।

ये अनुभव थे ऐसे जिनको नहीं मानता था विज्ञान,
शब्दातीत तत्व का कैसे हो सकता शब्दों में ज्ञान,
जँचा सत्य जब कुलकर्णी को जाग उठा उसका विश्वास,
बना तभी से वह वैज्ञानिक पूर्ण राम-चरणों का दास।

सभी स्तरों के लोग राम पर श्रद्धा रखते थे अत्यन्त,
सभी राम को प्रिय थे चाहे हों गरीब वे या श्रीमन्त,
कहें इसे संयोग, नहीं तो कुलकर्णी का संचित-पूर्व,
क्योंकि इसी ने किया अमरिका में आवश्यक कार्य अपूर्व।

हुआ युवक का गमन अमरिका कुछ ही वर्षों के जब वाद,
जन-जन को तव दिया राम का कुलकर्णी ने शुभ संवाद,
ऊब उठे थे लोग वहाँ के श्रीसमृद्धि का करके भोग,
और शान्ति जीवन में पाने लालायित थे वे सव लोग।

यही अवस्था वह है जिसमें सम्बल देते हैं भगवान,
राह भक्त की उसे दिखाकर करते निज सान्निध्य प्रदान,
था निमित्त कुलकर्णी केवल पूर्व नियोजित था भवितव्य,
देख रहा था वहाँ राम की बाट राम का ही कर्त्तव्य।

इसीलिए तो मिला युवक को देश अमरिका से अनुदान,
और उसी से हुआ असम्भव सम्भव कर सकना प्रस्थान,
राम प्रेरणा से ही उसने किया योग का वहाँ प्रचार,
हुई प्रभावित पाकर जनता राम कथित उपदेश अपार।

उन्हें लगा, हो उन्हें राम का जैसे भी हो दर्शन प्राप्त,
क्यों कि राम को मान चुके थे वे सब ही अपना जन-आप्त,
सुनकर आकुलता भक्तों की व्यय कर निज पल्ले से दाम,
साहचर्य भक्तों को देने वहाँ शीघ्र जा पहुँचा राम।

जमखण्डी की रानी साहब लीलाबाई जी श्रीमन्त,
हृदयरोग से ग्रस्त हुई जब दूर नहीं था उनका अन्त,
राजा साहब परवर्धन ने दी उसको तद् विषयक तार,
और राम ने ॐ शक्ति से दिया मृत्यु से उन्हें उबार।

पहुँच गया वह पूना सत्वर पाकर आकस्मिक सम्वाद,
चिन्तित थे डाक्टर अनुचर सब छाया था सर्वत्र विषाद,
लगा रक्त था जमने केवल थी दिल में जाने की देर,
बात क्षणों की थी वह रोगी किसी समय हो जाता ढेर।

देख राम को सम्मुख बोलीं रानी साहब हो असहाय,
'चली आज लो कर न सकी मैं सत्य-कर्म कुछ भी तो हाय !'
कहा राम ने निश्चल स्वर में 'अगर शेष है कुछ भी कर्म,
तो निश्चय ही हर न सकेगी मृत्यु आपका जीवन-धर्म'।
छोड़ चुके थे आशा डाक्टर मुश्किल था करना विश्वास,
स्वास्थ्य-लाभ पर, किसी समय वे ले सकती थी अन्तिम साँस,
किया राम ने उनको अपनी दीर्घ आयु का भाग प्रदान,
हुई स्वस्थ वे चला न उनपर कुटिल काल का पाश निदान।
एक बार जब कुरन्दवाड़ के राजा साहब होकर त्रस्त,
गए राम के पास गिरस्ती तजकर होने को सन्यस्त,
कहा राम ने उचित नहीं है उनको यों ले लें सन्यास,
योग्य बल्कि है घर में ही रह करें नित्य उसका अभ्यास।
हुआ राम के उन वचनों का उनपर आवश्यक परिणाम,
और उन्होंने किया शान्ति से नत मस्तक हो उसे प्रणाम,
भारत की काश्मीर भूमि पर चढ़ आया जब पाकिस्तान,
सन् सैंतालिस में, जनता पर हुआ जुल्म अत्यन्त महान।
भारत की थीं वहाँ न फौजें जो करती उसका प्रतिकार,
आए दिन हो रहे प्रजा पर थे पैशाचिक अत्याचार,
महिलाओं का नित्य अपहरण और भ्रष्ट पुरुषों का धर्म,
करना था बन गया उन दिनों उन पशुओं का दैनिक-कर्म।
एक दिवस घिर गए जानकी नाथ लुटेरों से, असहाय,
किया लूट के साथ-साथ ही धर्म-भ्रष्ट भी उनके हाय !,
पहना उनको तुर्की टोपी और पिलाई अपनी चाय,
उन बर्बर पशुओं के सम्मुख चला न उनका एक उपाय।
आततायियों के हटते ही जब बैठे वे आँखें मीच,
तो देखा उद्यान सामने जहाँ न थे प्रस्तुत वे नीच,
बल्कि बगीचे के फाटक पर स्वयं राम को लिखते देख,
'जयहिंद' अजानक जागी उनमें फिर से नव-आशा की रेख।
सुना उसी के बाद उन्होंने आ पहुँची भारत की फौज,
उन पशुओं को त्वरित दिखाने अपनी असि-धारा का ओज,
जहाँ कहीं भी जाता था वह वहीं प्राण देता था फूंक,
सूक्ष्म कार्य के साथ स्थूल भी जाग्रति करता था बिन चूक।

एक बार जा रहा राम था अमरनाथ पर्वत की ओर,
पड़ी राह में बर्फ भयानक और हुई थी वर्षा घोर,
शिष्य बालजी लिए संग थे आवश्यक थोड़ा सामान,
विकट चढ़ाई चढ़ने में था उन्हें न अपना कुछ भी मान।

निराहार सारा दिन चलकर पहुँचा जब वह शीशमबाग,
चलते रहने की धुन से वह पड़ा अचानक मानो जाग,
चूर-चूर हो रही देह थी और क्षुधा से व्याकुल प्राण,
वहीं डाक-बँगले में दोनों ठहर गए करने आराम।

पास नहीं था अन्न जरा भी किन्तु साथ थी थोड़ी चाय,
लगे जलाने अग्नि बाल जी गीली लकड़ी से निरुपाय,
फूंक-फूंक कर हार गए पर उठी न लौ जब, हो असहाय,
खीज, बालजी रुष्ट भाव से जा लेटे पीछे निरुपाय।

लगा देखने राम धुएँ को निर्निमेष सहसा कुछ काल,
देख धधकती ज्वाला सत्वर हुए बालजी हर्ष निहाल,
सों-सों कर जल उठी लकड़ियाँ गीली की गीली नित्तान्त,
देख रहा था राम अग्नि को निर्विकार सा बैठा शान्त।

चाय-पान कर कुछ ही क्षण में हुए बालजी निद्राधीन,
किन्तु राम था अब भी बैठा ध्यान-मग्न प्रभु स्मृति में लीन,
देख स्वप्न भयभीत बालजी उठ बैठे निद्रा से जाग,
मानो उनके पीछे कोई आ पहुँचा हो दानव भाग।

कहा उन्होंने काँप राम से सपने का सारा वृत्तान्त,
देखा ल्याकत अली खड़ा था ताने मुट्ठी क्रोधाक्रान्त,
प्राण हनन उनका ही करने आया हो मानो वह क्रूर,
और खड़े हों वहीं बालजी शस्त्रहीन, कातर, मजबूर।

तभी उन्होंने देखा पीछे राम खड़ा था उनके पास,
देख राम को जागा सहसा उनका अपने प्रति विश्वास,
दिया राम ने उनको भाला कुटिल काल सा तीक्ष्ण मयान,
जिसके दर्शन से ही घातक हुआ उदृश्यगति से द्रुतमान।

सुनते ही वह स्वप्न राम ने कहा 'क्रूर वह निःसंदेह,
कूच शीघ्र ही कर जाएगा त्याग आसुरी अपनी देह,
हुए अभी थे इस घटना को पूरे मुश्किल से दिन आठ,
इतने में सुन लिया जगत ने उतरा वह मृत्यु के घाट।

एक भक्त को सन् बासठ में हुआ राम का परिचय प्राप्त,
लगा उसे तत्काल, राम हो मानों उसका ही जन आप्त,
बैठ राम के सम्मुख उसने पाए अनुभव दिव्य अनेक,
ध्यान, धारणा और स्वप्न में लगा देखने उसको एक।

एक बार जब गया भक्त वह रामकुँज में उसके पास,
वहीं एक दिन सहज राम से पूछा उसने प्रश्न सहास,
'मुझे बताएँ यदि प्रसाद हो पहुँचे हैं किस स्थिति को आप ?
सुना राम ने कौतूहल से वह सवाल उसका चुपचाप।

बोला वह तत्काल 'राम है खाता पीता करता बात,
इससे बढ़कर और कहो तो नहीं राम को स्थिति है ज्ञात',
इतना कहकर मौन हुआ वह थी लेकिन मुँह पर मुस्कान,
भक्त विचारा हतोत्साह हो रहा मौन बैठा अज्ञान।

किन्तु भक्त वह संध्या को जब बैठा कुटि में करने ध्यान,
पाया उसने उसी प्रश्न का अवचित उत्तर दिव्य महान,
देखा उसने हंस सामने सोने का जीवित अभिराम,
और साथ ही सुना 'राम की परमहँस स्थिति है निष्काम।

इन शब्दों के बाद भक्त ने देखा सम्मुख दिव्य प्रकाश,
जिसके उजियाले से सारा ज्योतिर्मय पाया आकाश,
उस प्रकाश में रिक्त सिंहासन सम्मुख आलोकित था एक,
अन्तराल दैदीप्यमान था जिसके कण-कण से प्रत्येक।

सुने भक्त ने शब्द किसी के 'यह आसन है दिव्य महान,
स्थूल देह अपनी तजते ही जहाँ राम पाएगा स्थान।',
भक्त चकित था यही सोचता कहने वाला था वह कौन,
जबकि राम था रहा पूर्णतः प्रश्न भक्त का सुनकर मौन।

कहा राम से उसने जाकर अपने अनुभव का महिमान,
मौन रहा वह फिर भी, यद्यपि होठों पर झलकी मुस्कान,
यही भक्त जब एक शाम को उसके सम्मुख करने ध्यान,
बैठा था तब राम किए था श्वेत एक तहमत परिधान।

चाँद पूर्णिमा का था सुन्दर आया उन शिखरों की आड़,
किन्तु चाँदनी को बढ़ने से रोक पा रहा था न पहाड़,
राम तख्त पर समासीन था किए पीठ गंगा की ओर,
और भक्त आसीन सामने था उत्सुकता दावे घोर।

तभी एक सज्जन आ बैठे लगे राम से करने बात,
अप्रत्याशित उस प्रसंग से हुई ध्यान में देर हठात्,
राजनीति पर सज्जन अपने भाव कर रहे थे अभिव्यक्त,
और राम पर दृष्टि गड़ाए बैठा देख रहा था भक्त,

तभी अचानक उसने देखा उसके खुले बदन का भाग,
लगा चमकने धवल ज्योति सा मानों कोई दिव्य चिराग,
भीतर तन के ज्योतिर्मय हो तेज पुँज हो जिससे देह,
हुआ भक्त को इस अनुभव से अपनी आँखों पर संदेह।

हटा दृष्टि वा होंठ चबाकर देखा उसने फिर जब ताक,
दृश्य और भी एक अनूठा लगा देखने भक्त अवाक्,
राम स्थान पर देखे उसने बैठे क्रमशः सात महान,
व्यक्ति, छोड़ पर तीन जनों को सका न औरों को पहचान।

परमहंस श्री रामकृष्ण वा नानक साहब तथा कबीर,
देख वहाँ अवतरित राम में हुआ भक्त अत्यन्त अधीर,
सहज जानने को देखे जो चार व्यक्ति वे सब थे कौन,
किन्तु विवश वह रहा देखता बिन पहचाने उनको मौन।

ज्योतिर्मय था व्यक्ति सातवाँ पूर्ण दिव्य थी उसकी देह,
तेज पुंज लौ से हो निर्मित मानो वह तन निःसन्देह,
नाटक से वे दृश्य सामने आए सातों दिव्य महान,
मानो राम स्वयं आया हो भिन्न वेश करके परिधान।

होते ही सम्पूर्ण दृश्य वह हुआ भक्त का त्राटक भंग,
बातचीत पर राम कर रहा था अब भी सज्जन के संग,
हुआ देखकर भक्त चकित वह अपने सम्मुख जाग्रत दृश्य,
नहीं समझ पाया लेकिन वह निहित अर्थ उसमें अदृश्य।

शीघ्र राम चरणों को उसने ज्यों ही झुककर किया प्रणाम,
'क्यों क्या कोई खास बात है ?' बोला किंचित हँसकर राम,
कहा भक्त ने अनुभव अपना हुआ राम सुन उसको मौन,
जैसे उसको भी न विदित हो सात व्यक्ति वे सब थे कौन।

निर्भयता, आनन्द, संघठन हैं उसके जीवन-सिद्धान्त,
बही इन्हीं से प्लावित होकर उसकी जीवन-गंगा शान्त,
इसीलिए तो जो भी आया इस त्रिवेणी के पावन कूल,
मिला उसी को ध्येय जन्म का जीवन-धारा के अनुकूल।

कहा किसी से कभी न उसने छोड़ गृहस्थी ले सन्यास,
क्योंकि व्यक्ति घरबार छोड़कर भी तो रहता मन का दास,
तोड़ व्यक्ति सकता है निश्चित सब प्रपंच के बन्धन वार,
और गुफा में कर सकता है जा कर एकाकी संचार।

किन्तु वहाँ भी वह करता है अपने सब इन्द्रिय व्यापार,
ओर सतत मन में रहता है पिछली स्मृतियों का गुरु भार,
बिन पाए उनसे छुटकारा कभी हुआ क्या कोई मुक्त,
बिना किए मन को अपने वश सदा रहा वह बन्धन-युक्त।

अतः राम की सीख यही है करे न कोई गृह-परित्याग,
कर्म कुशलता से करके ही करे सहज कर्मो का त्याग,
अर्थ ध्वनित होता है जिससे करते रहकर भी सब कर्म
पंकजवत् सुख-दुख में रहना हो जाए मानव का धर्म।

हो सकता यह शक्य तभी जब प्रभु से कर्मों का सम्बन्ध,
रख पाए मानव जागृति से सतत कर्मरत हो सानन्द,
अतः व्यक्ति को श्रेयस्कर है जो भी वह करता हो काम,
प्रभु-चिन्तन में लीन सर्वदा करे उन्हें होकर निष्काम।

अहंभाव से ही आता है कर्मों का उस पर दायित्व,
छोड़ जिसे वह बन सकता है कर्मों के बन्धन से मुक्त,
यह स्थिति है केवल मन की नहीं चाहती जो गृह-त्याग;
करके कायरता से मानव चला वनों में जाए भाग।

किन्तु प्राप्त वह हो सकती है निश्चित घर में करके वास,
प्रभु-चिंतन से साथ कर्म का सतत व्यक्ति यदि करे प्रयास,
स्मृति-जाग्रति भी शक्य तभी है हो मानव में अगर विवेक,
और जानना यदि वह चाहे ध्येय जन्म का निश्चित एक।

जिज्ञासू मानव के हित ही निज अनुभव का मर्म विशेष,
दिए राम ने हैं लोगों को कृपा भाव से दस आदेश,
काया, वाचा, मनसा मानव जागृत रहकर करे प्रयास,
सत्य बोलने का उसमें हो मानव का अखण्ड विश्वास।

आध्यात्मिक उन्नति में होता बड़ा सहायक स्वस्थ शरीर,
युक्ताहार, विहार, नियम से बनता मानव स्वस्थ सुधीर,
श्रद्धा भक्ती युक्त हृदय से रक्खे मानव जागृत ध्येय,
साँस-साँस में प्रभु चिंतन से मानव का हो जीवन श्रेय।

मदिरा, गाँजा, मांस, भाँग जो करते तमगुण की अभिवृद्धि,
कभी न सेवन करे न जिससे हो मानव की दूषित बुद्धि,
सतत धारणा व्यक्ति करे यह शक्ति, धैर्य, मेरा आनन्द,
छीन नहीं मुझसे सकता है कोई, और रहे सानन्द।

करे मनुज जितना सम्भव हो नित्य दूसरों पर उपकार,
वृथा किसी को दुख पहुँचाने का न कभी भी करे विचार,
करे अध्ययन सद् विचार से सद्ग्रन्थों का मानव नित्य,
सदोचार वा सत्संगति से हो मानव का जीवन युक्त।

पड़े उठाना चाहे जितना भी दुःसह मानव को कष्ट,
बन अशान्त वह करे न बिल्कुल द्वेष कभी मित्रों से इष्ट,
करे मनुज जीवन उन्नति के नियमों का पालन निर्बाध,
सतत रहे उत्साही मन में तजकर सब आलस्य-प्रमाख।

प्रभु की स्मृति से युक्त निष्कपट हो उसका दैनिक व्यवहार,
निर्भयता, आनन्द, सङ्गठन का हो प्राणों में संचार,
निर्भयता, आनन्द, संगठन है आत्मा का मूल स्वभाव,
पर उससे मायावश होकर करता उसका मनुज दुराव।

वेद-वाक्य आत्मा को कहता शाश्वत, आदर और अनन्त,
पञ्चभूत भी कभी न उसका क्षय, या कर सकते हैं अन्त,
यही चिरन्तन सत्य मनुज के नश्वर तन में करता वास,
किन्तु इन्द्रियों के वश मानव खो देता उसका आभास।

पञ्चभूत के तन को ही वह समझ बैठता है निज रूप,
विस्मृत कर अन्तर्यामी को जो शाश्वत है और अरूप,
इसी भ्रान्ति के कारण नश्वर तन पर कर 'मैं' का आरोप,
सतत् मृत्यु से डरता मानव होता जिससे दुःख प्रकोप।

भूल अविद्या से जाता वह नहीं जन्म का मृत्यु विराम,
जीवन चलता रहता शाश्वत बदल कलेवर नित अविराम,
धारण करता देह जीव है मानव ज्यों कपड़े परिधान,
वस्त्र-त्याग से कभी न देखा होता मानव का अवसान।

अतः मनुज को उचित यही है प्रथम करे अपनी पहचान,
तो निश्चित वह जान सकेगा अपना सच्चा रूप महान,
मनुज चाहता यहीं हमेशा रहे सर्वदा वह जीवन्त,
इसीलिए भयभीत मृत्यु से होता रहता है अत्यन्त।

अमर-तत्व आत्मा को लेकिन जब लेता है वह पहचान,
मुक्त मृत्यु के भय से होकर पाता आत्मानन्द महान,
इसी भाँति हर मनुज चाहता पाए वह सुख का आनन्द,
रहे चैन से सदा सर्वदा कभी न हो सुख उसका मन्द।

सुख की अभिलाषा में मानव सृष्टि नियम को जाता भूल,
सुख होता है क्षणिक मात्र पर दीर्घ काल रहता दुख-शूल,
सुख-दुख दोनों ही निश्चित हैं एक अवस्था के ही नाम,
किन्तु भ्रान्ति से उन्हें बनाता श्रेय हेय मानव अनजान।

वह देता अनुकूल परिस्थिति को हरदम ही सुख का नाम,
और सदा प्रतिकूल परिस्थिति को दुख कह देता अविराम,
पर दोनों ये स्थितियाँ होती मानव के ही मन की जन्य,
स्वार्थ दृष्टि से उन्हें देखता रहता मानव और न अन्य।

आत्मरूप विस्मृति से होता मानव पर खुद का संघात,
और बीत जाता सारा ही मूल्यवान जीवन अज्ञात,
करता रहता आजीवन वह केवल खुद का ही प्रतिकार,
भ्रान्ति ग्रस्त पर मनुज बिचारा कभी न पाता उससे पार।

त्रिगुणाहीत तत्व जब धारण कर लेती है भौतिक देह,
प्रकृति ष्टधा से हो जाता युक्त तभी वह निःसन्देह,
त्रिगुणात्मक माया में मानव जाता है अपने को भूल,
यही चिरन्तन नियम सृष्टि का उसकी रचना के अनुकूल।

पञ्चेन्द्रिय, मन, बुद्धि अहन्ता का उस पर छा जाता नूर,
और जनित इनसे त्रिगुणों के होता वश मानव मजबूर,
अगर नहीं तो उस अक्षर को जो करता है उसमें वास,
मनुज भूल सकता है कैसे पाकर भी उसका आभास।

काट अविद्या को यदि मानव धारण कर ले अन्तर दृष्टि,
तो वह पायेगा भीतर ही अपने, विश्वात्मा की सृष्टि,
चिदानन्द, चैतन्य तत्व वह बीज सृष्टि का त्रिगुणातीत,
स्थूल देह के बन्धन में भी होगा उसको मुक्त प्रतीत,

इसी तत्व से समरस होकर रहना यदि हम जाएँ सीख,
तो निश्चित ही, राम बताता हो जाएँगे हम निर्भीक।

और हमारे शून्य हृदय में छाएगा अक्षय आनन्द,
उसी तत्व का जो अपने में आत्मरूप है नित्यानन्द,
सजग यत्न से हो जाएगी जब भी हमको यह स्थिति प्राप्त,
हमें लगेगी सभी चराचर वस्तु विश्व की निश्चित आप्त।

द्वैत भाव हो जाएगा लय होगा एक तत्व का बोध,
आत्मरूप में खो जाएगा चिर-संचित सारा अवरोध,
यही संघठन है वह जिसको कहता है श्रेयस्कर राम,
आत्मोन्नति के साथ लोक की उन्नति में जो आता काम।

यही शक्ति, सौन्दर्य यही है विश्व रूपता में नितान्त,
द्वैतभाव से किन्तु न पाता उसका दर्शन मानव भ्रान्त,
नहीं तत्व या वस्तु विश्व की कोई भी तो निःसम्बन्ध,
एक दूसरे पर अवलम्बित सभी चराचर है निर्द्वन्द।

नहीं विश्व के किसी धर्म में भी पाया उसने प्रतिरोध,
चले मनुज स्व-धर्म मार्ग पर यही किया सबसे अनुरोध,
करें धर्म पालन हम अपना पर न दूसरों का प्रतिकार,
सत्यनिष्ठ हम रहें सर्वदा सबके प्रति अत्यन्त उदार।

नहीं सिखाता धर्म विश्व का वने सिद्धि, साधन-आचार,
और रहें निर्दिष्ट हृदय में विद्वेषक, विषमय कुविचार,
वह होगा केवल आडम्बर रूप प्रदर्शन के सदृश्य,
मानस में हो जहाँ नियोजित कुटिल वासनाएँ अदृश्य।

प्रथम आत्मशुद्धि आवश्यक और वाद में है व्यवहार,
यही राम ने पाया जग के सब धर्मों में प्रस्तुत सार,
अतः हमें है राम बताता करें मुक्त आचार-विचार,
आत्म-शुद्धि हो जिससे सम्भव मिटकर सारे सुप्त-विकार,

इसी तत्व का भरने मानव के जीवन में पक्का रंग,
किया निरूपित उसने साधन 'सतत धारणामय सत्संग'।
सतत धारणा वह है जिसमें करते रहते भी सब काम,
साधक हो प्रभु-स्मृति में तन्मय, वाणी पर हो उसका नाम,

साँस-साँस में चले निरन्तर चिन्मय प्रभु का नामोच्चार,
दिव्य गुणों से पूरित हो मन, रहे न मन में शेष विकार।
करे न साधक कभी परस्पर कोई जग सम्बन्धी बात,
हो अखण्ड साधन में जिससे नहीं भूलकर भी व्याघात,

जब भी वह यह करे साधना रहे आत्म-निर्भर नित्तान्त,
मंत्र-ध्वनि के साथ स्वयं हीं करे काम सब अपना शान्त,
प्रभु की स्मृति से हो संचारित शयर और उसका जलपान,
इसी भाँति विश्राम करे तव भी हो उसको प्रभु का ध्यान ।

स्वच्छ देह के साथ साथ है आवश्यक हो मन भी शुद्ध,
पूर्ण वायु मण्डल हो जिससे पावन, साधन-युक्त प्रबुद्ध,
सतत साधना कक्षाओं से होता साधक को अभ्यास,
सीख कर्म करना वह जाता अनुक्षण प्रभु में करके वास ।

अहं भाव मिट जाता प्रभु की स्मृति में करते ही सव काम,
सुख-दुख से उठ जाता ऊपर साधक बन जाता निष्काम,
करके कर्म गृहस्थी में भी होकर दिव्य गुणों से युक्त,
अनायास ही हो जाता वह जीवन के बन्धन से मुक्त ।

निस्पृह जीवन से हो जाता चंचल मन साधक का रिक्त,
और सहज ही हो जाता वह दिव्य गुणों से प्रभु के सिक्त,
कक्षाएँ ये कई, राम ने ली नगरों में बारस्बार,
स्वानुभूत यह मर्म बताकर दिया कई जीवों को तार ।

मन को वश कर सकना, माना, कठिन समस्या है नित्तान्त,
जितना ही हम करें यत्न वह और भटकने लगता भ्रान्त,
इसी सत्य के कारण उसने करके अपना अनुसंधान,
दिया जगत को नव्य सर्वदा 'दृष्टि-योग' का अनुपम दान ।

'दृष्टि-योग' वह है जिसमें हम मूर्त्त वस्तु रख सम्मुख एक,
करें दृष्टि स्थिर उसपर अपनी कर विचार सारे निःशेष,
उसी वस्तु का एक निरन्तर हो मन में, यदि उठे विचार,
निश्चल सीधा मेरुदण्ड हो छले न तन को अन्य विकार ।

निर्निमेष आँखों से होता धीरे-धीरे मन भी शान्त,
और उसी से वस्तु-धारणा भी स्थिर होती और प्रशान्त,
होता मन एकाग्र शून्य वह दृष्टि.धारणा से अत्यन्त,
और रिक्त मन में छा जाता चुपके से वह तत्व अनन्त ।

वस्तु धारणा की हो चाहे मूर्ति, पुष्प, या केवल बिन्दु,
उसी धारणा से पा सकता साधक वांछित करुणा-सिन्धु,
शुरू शुरू में उसका अनुभव हो चाहे बिलकुल क्षण मात्र,
होगा कमशः वह चिरस्थायी हो साधक यदि उसके पात्र ।

नित्य-धारणा और शुद्ध मन आत्म-बोध के हैं दो भेद,
जिससे होता जीव-ब्रह्म का निश्चित स्थापित पूर्ण अभेद,
कहता राम कल्प-वृक्ष है ऊर्ध्वमूल सारा संसार,
प्रति क्षण परिवर्तित होता है अखिल सृष्टि-क्रम बारम्बार।

सभीं वस्तु जड़ हो या चेतन बदला करती है अविराम,
और बदलने के कारण ही सार्थ सृष्टि है उसका नाम,
मनो धर्म है मानव मन का उठा करें उसमें संकल्प,
और साथ ही साथ लगे हों उनके पीछे कई विकल्प।

इन्हीं विरोधी दो स्थितियों में मनुज ध्येय है जाता भूल,
जिससे सुख-दुख के बन्धन में पड़कर वह पाता है शूल,
हर मानव का अपना होता एक प्रथम सबसे संसार,
उसी भाँति वह बनता जैसे होते उसके गत् संस्कार।

मानव की सारी कृतियों का केन्द्र-बिन्दु है मानस एक,
व्याप्त विश्व को करती सारे उसकी ही गतिविधि प्रत्येक,
मन अगणित हैं मनुजों के: पर मूल सभी का ही है एक,
सृष्टि वृक्ष है यही कहाता शाखाओं से युक्त अनेक।

आधारित है सिर्फ कल्पना पर ही यह सारा संसार,
और उसी से हो जाता है आखिर में उसका संहार,
चिंतन, इच्छा और कर्म ही अखिल विश्व की है बुनियाद,
उससे ही वह बनता सुखमय अथवा होता पूर्ण-विषाद।

सदा सर्वदा कल्पवृक्ष यह मानव इच्छा के अनुकूल,
देता रहता उसे पूर्णतः मनवाँछित फल सुख या शूल,
मानव निज प्रत्येक साँस में धारण करता एक विचार,
एक मिनट में तीस बार है होता भावों का संचार।

होते जितने भाव अधिक ये होते उतने ही कमजोर,
जितने कम होते उतने ही शक्तिपूर्ण वे होते घोर,
दृश्यादृश्य विश्व संघटना है इच्छा का ही परिणाम,
और सदा संकल्प-शक्ति ही करती उसके पीछे काम।

जो भी हो इच्छा मानव की इसी सृष्टि में होती पूर्ण,
लेता है वह जन्म निरन्तर कई, अगर वह रहे अपूर्ण,
इसीलिए कोई भी मानव बिना हुए इच्छा की तृप्ति,
कभी न पा सकता छुटकारा और न भव-बन्धन से मुक्ति।

पुनर्जन्म का रहा सदा से कारण मात्र यही है सत्य,
आते रहते जीव धरा पर तृप्त उसी को करने नित्य,
पर विरोध साँसों का करता योगी करके प्राणायाम,
एकमात्र इच्छा को करता सारी अपनी शक्ति प्रदान।

पूर्ण शक्ति केन्द्रित होने से शीघ्र कामना होती तृप्त,
जन-साधारण की तुलना में जहाँ कई वे होतीं सुप्त,
इसी भाँति है भक्त निरन्तर करता रहता प्रभु का जाप,
जिससे उसकी साँस साँस में चलने लगता है जप आप।

ऐसी स्थिति में हो जाए यदि किसी कामना का उद्रेक,
तो मन की एकाग्र शक्ति से शीघ्र पूर्ण होती वह एक,
कल्पवृक्ष का यही धर्म है करे पूर्ण मन का अरमान,
भली बुरी जो भी हो इच्छा उसी भाँति फल करे प्रदान।

इसीलिए तो चोर लुटेरों की इच्छा भी होती पूर्ण,
क्योंकि कुकर्मों पर स्थिर होती शक्ति सदा उनकी सम्पूर्ण,
किन्तु सम्पदा कर सकती है केवल भौतिक वस्तु प्रदान,
और उसी से द्विगुणित होने लगते मानव के अरमान।

नहीं कभी समृद्धि से मानव ने पाया है दिव्यानन्द,
वह तो आत्मा परमात्मा का सूक्ष्म परस्पर है सम्बन्ध,
सतत् स्मरण से केवल प्रभु के चित्त शुद्ध हो जाता पूर्ण,
और सहज भर जाते उसमें दिव्य प्रभू के गुण सम्पूर्ण।

अतः व्यक्ति को है श्रेयस्कर प्रथम चुने जीवन का ध्येय,
कल्प-वृक्ष से सदा उसी का माँगे मन वाँछित फल श्रेय,
सदा राम का रहा निरन्तर गीता पर अखण्ड विश्वास,
उसके ही अनुरूप राम ने सदा किया जीवन अभ्यास।

किए राम ने आत्मसात् सब भगवद्गीता के उपदेश,
और शक्ति पर उसके अनुपम लिख डाला अपना सन्देश,
कहता है वह हमें बताती गीता करने को परित्याग,
सब धर्मों का, और शरण में एक उसी के करने वास,

अर्थ धर्म का नहीं इसाई जैन, बौद्ध, हिन्दू, इस्लाम,
ताज्य धर्म है वही इंद्रियाँ जो हम सबकी करती काम,
अतः निहित है गीता में इन, इंद्रिय-धर्मों का संकेत,
त्याग जिन्हें हम कर सकते हैं हासिल जीवन का उद्देश्य।

नहीं शक्य पर वही बताती कर्मों से पा सकना पार,
धर्म इन्द्रियों का नैसर्गिक चले सदा उनका व्यापार,
नहीं छूटता, और न छूटा कभी इन्द्रियों का जो धर्म,
उसे मनुज तज सकता कैसे कठिन समझना है यह मर्म।

किन्तु राम ने युक्ति-युक्तता इन कथनों की ली पहचान,
और विश्व के सम्मुख रक्खा जटिल प्रश्न का सरल निदान.
वह कहता है सभी इन्द्रियाँ जो स्वभाव वश करतीं कर्म,
वे सब होते दो प्रकार के यही रहा है इन्द्रिय-धर्म।

जो भी हैं यह नयन देखते और सुना करते हैं कान,
श्रेय हेय उस सबमें होता है सबको उसकी पहचान,
भला बुरा दोनों ही जग में उसी नियंता के हैं रूप,
अहं व्यक्ति का उन्हे बनाता श्रेय-हेय अपने अनुरूप।

कर दायित्व वहन कर्मों का करता वह इन्द्रिय-व्यापार,
इसीलिए वह पा सकता है कर्म-फलों से कभी न पार,
धर्म लोचनों का है देखें नयन मनोहर मोहक रूप,
किन्तु देखने में उठ सकता मानस में विचार विद्रूप।

किन्तु रूप से रूप-रचयिता पर यदि जाए तत्क्षण ध्यान,
तो न देखने में ऐसी छवि है निश्चित कोई नुकसान.
सभी इन्द्रियाँ इसी भाँति हैं करती रहती दोनों कर्म,
त्रिगुणाधीन इन्द्रियों का है एक यही स्वाभाविक धर्म।

पाँच ज्ञान वा कर्म इन्द्रियाँ अहं, बुद्धि, मानस वा चित्त,
यही चतुर्दश तत्व प्रमुख हैं मानव केवल मात्र निमित्त,
अहंकार को भूल मनुज यदि करे कर्म हो प्रभु में लीन,
स्थित प्रज्ञ वह हो जाएगा बन जाएगा कर्म प्रवीण।

इसीलिए तो गीता कहती त्रिगुणों का करके परित्याग,
पार्थ करो तुम कर्म खुशी से छोड़ सभी दुख वा अनुराग,
त्रिगुण संतुलित होते ही हैं मिट जाता 'मैं' भाव तुरन्त,
भार कर्म का ले लेता वह अपने ऊपर तत्व अनन्त।

जो उसके भीतर निगूढ़ है शाश्वत, चिन्मय और अरूप,
और सृष्टि के जड़-चेतन में है जिसका प्रतिबिम्बित रूप,
ऐसी स्थिति में मिट जाता है कर्ता और कर्म सम्बन्ध,
रह जाता है शेष व्यक्ति में एक उसी का आत्मानन्द।

आत्म-तत्व से युक्त कर्म ही श्रेयस्कर है और महान,
शेष कर्म सब करते रहते कर्ता को सुख-दुःख प्रदान,
पाप-पुण्य का यही एक है राम बताता, अन्तर्भेद,
पुण्य वही है कर्म करे जो रखकर प्रभु से पूर्ण अभेद।
प्रभु की स्मृति में कर्म निरन्तर करना ही है सच्चा धर्म,
और भुलाना उसे पाप है या कह सकते उसे अधर्म
निर्भयता आनन्द संघटन प्रभु के गुण ये तीनों दिव्य,
आत्मसात कर करें कर्म हम सहज और पाएँ गन्तव्य।
पार्थ भयाकुल था स्वजनों का अपने करने को संहार,
कौन स्वजन वा पर जब इसका किया राम ने स्पष्ट विचार,
जो न सहायक आत्मोन्नति में हो समाज, जन या हो देश,
अपना हो परिवार, स्वयं की इन्द्रिय ही हो क्यों न विशेष।
वह बाधक है आत्मोन्नति में श्रेयस्कर है उनका नाश,
यही धर्म है, काटे मानव निर्भयता से उनका पाश,
नहीं बिल्व मंगल ने जाना 'स्वजन' लोचनों को क्षण मात्र,
होते ही आसक्त रूप पर बनी दण्ड के आँखें पात्र।
अस्तु हमें है श्रेयस्कर हम अहंकार का करें निषेध,
और शरण में प्रभु की जाएँ शंकाओं का कर विच्छेद,
आत्म समर्पण हो सच्चा वह तन मन धन से पूर्ण प्रकार,
मिटे द्वैत सम्पूर्ण शेष हो बेशक केवल तन का भार।
ऐसा ही निर्अहंकार तन बन जाता है केवल यंत्र,
प्रभु का उसकी ही इच्छा से चलता उसका सारा तन्त्र,
अतः कर्म करके भी मानव रहता कर्म-फलों से मुक्त,
क्योंकि कर्म बन जाते उसके निर्विकार उस प्रभु से युक्त,
गीता कहती नहीं कर्म-फल, का होता प्रभु पर परिणाम,
क्योंकि फलेच्छाहीन कर्म सब प्रभु के होते हैं निष्काम,
शरणागति साधन से मानव पा सकता माया से पार,
इसी वाक्य में है गीता का राम बताता सारा सार।
हर मानव है यही चाहता, रहे सर्वदा प्रभु की गोद,
किन्तु अविद्यावश जन्मों से उसे न होता उसका बोध,
विकट विघ्न से आड़े आते उसके ही पिछले संस्कार,
देह, इन्द्रियाँ ही बन जातीं उसमें वा प्रभु में दीवार।

इसी दशा से पार्थ हुआ था मन में अत्याधिक बेचैन,
'शक्ति कौन जो कर्म विनाशक करवाती रहती दिन-रैन ?'
कहा कृष्ण ने वही तुम्हारे अन्तर्तम में है जो काम,
उत्तरदायी है 'इच्छा' ही उसे अन्यतम यदि दो नाम।

उससे ही होता रहता है सदा मनुज का चालन–बुद्धि,
प्रेरित करती वही कर्म को हो फिर क्यों कर्मों की शुद्धि,
अतः श्रेय है तुम्हें करो तुम काम पूर्ण मन से निःशेष,
अर्जुन के मिस दिया विश्व को यही कृष्ण ने है सन्देश।

सभी वस्तु जो भी मानव में करती है अभिवर्धित काम,
सभी धर्म हैं यही बताते करो त्याग उसका अविराम,
पर भ्रामक सन्यास–कल्पना राम मानता है नित्तान्त,
भाग जगत से दूर मनुज है प्रायः बनता और अशान्त।

कर्महीन बन जाता है वह दुर्बल, कायर वा संतप्त,
और इसी से रहती उसकी ध्येय कामना भी अतृप्त,
वही त्याज्य है काम सर्वदा जो हो मानव इन्द्रिय जन्य,
और न वह जो प्रभु से पूरित होता अन्तर्तम में अन्य।

शुचिर–कर्म में और काम में ऐसे, होता है न विरोध,
इसी सत्य का किया कृष्ण ने गीता में अर्जुन को बोध,
स्मृति जागति से सदा प्रभु की आवश्यक है करना कर्म,
क्योंकि यही है राम बताता श्रेष्ठ एक मानव का धर्म।

प्रभु की स्मृति जाग्रत रखने को अति आवश्यक है सत्संग,
क्योंकि सदा अज्ञान मनुज का करता रहता जाग्रति भंग,
आज सभी हैं राष्ट्र विश्व के स्वार्थ, घृणा, भय से अनुतप्त,
प्रेम, शान्ति की बातें करते नेता जग के सब सर्वत्र।

तज दें यदि वे अहंकार निज और न दें केवल उपदेश,
तो अभिवर्धित कर सकते प्रेम परस्पर सारे देश,
राम राज्य होगा पृथ्वी पर होगा आपस में बन्धुत्व,
कर दें यदि लय नेता प्रभु की सत्ता में अपना अपनत्व।

यही दिव्य संदेश निहित है गीता में, यदि करे प्रयोग,
उसका मानव तो निश्चित ही जीव-ब्रह्म का होगा योग,
आत्मोन्नति के मुख्य मार्ग हैं कहे धर्म–शास्त्रों ने तीन,
भक्ति, ज्ञान वा कर्म त्रयी के सदा रही है मुक्ति अधीन।

ये तीनों ही मार्ग भिन्न हैं पर अपनी रुचि के अनुसार,
व्यक्ति एक को चुनता जैसे होते उसके गत संस्कार,
भक्ति, ज्ञान वा कर्म मार्ग का किन्तु राम है मूर्त प्रतीक,
इसी त्रिवेणी में अवगाहन करे जगत, है उसकी सीख।

ज्ञानी–जग के जड़ चेतन में निराकार जो पाता तत्व,
वही भक्त साकार देखता प्रभु से स्थापित कर अपनत्व,
और कर्मयोगी भी पाता कर्म साधना में प्रत्यक्ष,
वही तत्व, सम्पूर्ण सृष्टि में कर्म-रूप बन खड़ा समक्ष।

इन तीनों से युक्त साधना महायोग बनकर अविराम,
प्राणिमात्र को कर देती है, सहज साध्य होकर, निष्काम,
आते ही निष्काम भाव यह आत्म-तत्व से हो संयुक्त,
जीव कर्म करके भी सारे हो जाता है बन्धन मुक्त।

गया राम दो वार अमरिका करने लोगों का उद्धार,
साहचर्य से उसके पावन कई जनों के मिटे विकार,
एलिस क्रिश्चयनसन नामक थी एक साधिका वहाँ सुजान,
दस वर्षों से योग साधना में वह थी महिला रममाण।

पढ़ रक्खा था शिवानन्द का उसने थोड़ा सा साहित्य,
और यहाँ आने को उसका तड़पा करता था मन नित्य,
पर मानव है एक सोचता और दैव उसके विपरीत,
पहले इससे उस रमणी का होता पूरा मन का मीत।

शिवानन्द स्वामी भी अपने आत्मरूप पर हो अनुरक्त,
विश्व–ज्योति में समा चुके थे होकर नश्वर तन से मुक्त,
आकस्मिक उनके प्रयाण का एलिस को था अतिशय खेद,
विदित नहीं था दुखी योगिनी को उसमें भी विधि का भेद।

एक निहित था, हुआ स्पष्ट जो केवल दो वर्षों के बाद,
हुआ राम का गमन अमरिका देने उसको दिव्य–प्रसाद,
नहीं लगे थे पैर अमरिका की भूमि पर उसके दिव्य,
पहले इसके ही पा बैठी एलिस उसका दर्शन भव्य।

इसीलिए जब हुआ राम का उसे वहाँ दर्शन प्रत्यक्ष,
हुआ न अचरज उसे जरा भी देख ध्यान की मूर्ति समक्ष,
होनहार था हुआ अचानक एक दिवस भीषण अपघात,
गिरी साधिका आनन-फानन गई चेतना सर्व हठात्।

क्रमशः उसपर फैल रहा था कुटिल मृत्यु का भीषण पाश,
पुलिस-चिकित्सक जो पहुँचे थे देख अवस्था हुए हताश,
तभी राम के पास पहुँचकर कहा पती ने वह वृत्तान्त,
राम गया तत्काल वहाँ पर जहाँ पड़ी थी एलिस शान्त।

किया राम ने उसके मस्तक पर अपनी अंगुली का स्पर्श,
दिव्य शक्ति से हुआ अचानक उसमें जीवन का उत्कर्ष,
कहा राम ने 'उठो' अचानक अपने स्वर में भर आदेश
उठ बैठी वह ललना सत्वर छाया लोगों पर आवेश।

उसी रात को पीड़ा से जब उठी योगिनी फिर चीत्कार,
मूक प्रार्थना से ही उसने सुला दिया उसको तत्काल,
प्रातः तक मिट गए मृत्यु के वर्तमान पहले के चिन्ह,
जाग उठी वह नव-जीवन ले हुई वेदना सारी भिन्न।

इस प्रसंग से जागा उसमें उसके प्रति श्रद्धा का भाव,
पकड़ लिए उसने आजीवन भव-उद्धारक उसके पाँव,
इस घटना में निहित मर्म का नहीं साधिका को था ज्ञान,
कर्म भक्त का ले लेते हैं कैसे ये सब संत महान।

योग-शक्ति से वे भक्तों पर करते रहते हैं उपकार,
कठिन भोग्य कर्मों से उनको देते हैं ये साधु उबार,
मुक्त कर्म से हो जाने को कर्मों को करके आसान,
भोग्य बना देते हैं उनको भक्तों को कर शक्ति प्रदान।

एलिस की टल गई मृत्यु पर कर्म अभी था उसका शेष,
इसीलिए वह साथ राम के हठ करके आई इस देश,
रामकुंज का दर्शन पाकर और जाह्नवी का सान्निध्य,
हुई योगिनी धन्य, साधना में रत रहती थी वह नित्य।

इसी बीच दक्षिण जाने का आया सहसा एक प्रसंग,
और योजना हुई अचानक एलिस की अवचित ही भंग,
नहीं राम था इच्छुक जाने को एलिस का साधन रोक,
कठिन टालना भी था लेकिन अपने भक्तों का अनुरोध।

धारवाड़ की उस यात्रा में एलिस भी थी उसके सङ्ग,
क्योंकि राम था उसकी पूजा का सबसे आवश्यक अङ्ग,
राम बम्बई पूना होकर पहुँचा धारवाड़ अविराम,
शरद् पूर्णिमा को लोगों को दवा दमे की करने दान।

कुलकर्णी ने कर रखा था इसका आयोजन सम्पूर्ण;
कुछ ही दिन में होने वाला था वह औषधि वितरण पूर्ण,
किन्तु राम को लगा अचानक आश्रम जाए राम तुरन्त,
रहे जाह्नवी के तट पर ही आ पहुँचा है शायद अन्त।

अतः राम ने अगली यात्रा का छोड़ा तत्काल विचार,
बिना रुके दिल्ली होता वह यथाशिघ्र पहुँचा हरद्वार,
चार दिनों के बाद अचानक उठा राम के उर में शूल,
रोक जिसे रक्खा था उसने आने तक गङ्गा के कूल।

देख राम की विकट वेदना हुआ योगिनी को सन्देह,
इस पीड़ा से निश्चय ही वह तज देगा यह भौतिक देह,
किया राम से दिल्ली चलने का उसने अतिशय अनुरोध,
किन्तु राम ने पीड़ा में भी उस सुझाव का किया विरोध।

कहा राम ने उचित यही है यदि तजना है मुझे शरीर,
अन्तिम क्षण में यहीं रहूँ मैं इस पावन गङ्गा के तीर,
शब्द राम के सुनकर एलिस रोते-रोते उठी पुकार,
मत छोड़ो यह देह राम तुम भक्तों का तो करो विचार।

केवल 'ठहरो' मुँह में कहकर हुआ राम अपने में लीन,
और दूसरे क्षण बोला वह एलिस से ही द्विधा विहीन,
देखा मैंने प्रभु को सम्मुख और भगवती भी थी पास,
नहीं उचित है एलिस तुमको हो जाओ यों व्यर्थ उदास।

पूछा मैंने जब दिव्या से क्या आया है मेरा काल,
कहा भगवती ने तुमको है कार्य अभी करना कुछ काल,
अतः राम अब कर सकता है दिल्ली का निश्चित प्रस्थान,
देख रहा हूँ अस्पताल में टिकने का कुछ पूर्व विधान।

चली योगिनी अबला सहसा धारण कर सबला का रूप,
लगी व्यवस्था करने जाने की धारण कर धैर्य अनूप,
होनहार था थी आश्रम में श्री चन्द्रातमजी की कार,
लिटा राम को उसके भीतर और मौन करती सीत्कार।

लगी चलाने कार योगिनी अधिकाधिक करके रफ्तार,
पहुँची आकर दिल्ली प्रातः लेकर वह दायित्व अपार,
उतर कार से खड़ा राम था लेकर हाथों में सामान,
हृदय-शूल की विकट वेदना में भी थी मुख पर मुस्कान।

पन्द्रह दिन तक अस्पताल में रहा, बात भक्तों की मान,
दो ही दिन में स्वस्थ हुआ यह देख चिकित्सक थे हैरान,
होते ही आराम राम को दिवस तीसरे आया तार,
विवश लौटना जिससे घर को किया योगिनी ने स्वीकार।

गई योगिनी छोड़ राम को लेकर अपनी भौतिक देह,
किन्तु यहीं थी साथ राम के उसकी आत्मा निःसन्देह,
आई हो वह भारत मानों यही कार्य करने को पूर्ण,
और लौट उसको जाना हो होते ही उसके सम्पूर्ण।

हृदय-शूल के दौरे को भी करके विस्मृत निशि दिन राम,
कर्म-निष्ठ था बिना दिए ही तन को आवश्यक आराम,
कहा भक्त ने एक बार जब 'करें आप कृपया विश्राम,
उचित नहीं है दुर्बलता में करें पूर्ववत् सारे काम'।

बोला वह 'जब देह न होगी उपयोगी करने में काम,
तो निश्चित ही व्यर्थ जानकर त्याग देह को देगा राम,
भ्रमण राम अब भी था करता करने लोगों का कल्याण,
बिना किए अपनी कुछ चिन्ता पाता था आनन्द महान।

गङ्गा की धारा सा उसका चलता था जीवन निर्बाध,
जीव-मात्र के लिए हृदय में धारे करुणा-सिन्धु अगाध,
उन्नीस सौ सत्तर में आए थे स्वामी दिल्ली कुछ काज,
और रहे थे तीन चार दिन आए थे मेरे घर आज।

उसी दिवस घर के पिछवाड़े लेटे थे करने आराम,
शीत-काल की मधूर, धूप थी आनन्दित था उनका राम,
पद-चापन की सन्धि अचानक मिली, राम का कृपा-प्रसाद,
और छिड़ा था हम दोनों में तत्व-निरूपण का सम्वाद।

अकस्मात् जब पूछा मैंने 'मृत्यु समय क्या होता क्लेश?',
'व्यक्ति-कर्म पर निर्भर है यह' था उनका उत्तर सविशेष,
तनिक मौन रह पूछा, 'तुम कब मिले राम से पहली बार'
'सन बासठ में' निकला मुख से मेरे, तत्क्षण कर सुविचार।

बासठ से दस वर्ष गिनाकर किया राम ने धारण मौन,
ढाँक लिया मुख पशमीने से लगा विलक्षण मुझको जान,
पूछा जब 'दस वर्ष गिनाकर रुके अचानक क्यों यों आप?',
नहीं बताया दो वर्षों में तजने का निज जीवन-व्याप।

इसी तरह था एक दिवस जब सीने में उसके कुछ दर्द,
पूछा 'क्या हम सबका होगा यदि तज देंगे मग मैं अर्ध',
बड़े जोर से पड़ा खिलखिला बोला, 'रहो सुखी तुम लोग,
आनन-फानन राम तजेगा देह, न जान सकेंगे लोग।

जब तक बन्धन है शरीर का सीमा है उसकी भी एक,
देह छोड़, कर राम सकेगा सहायता सर्वत्र विशेष,
अतीत वा भविष्य दोनों ही हो जाते हैं क्रम से भूत,
राम जानता था इस सच को बिना हुए उससे अभिभूत।

और बहत्तर ईस्वी सन् में पच्चीस सितम्बर था संयोग,
साधा उसने, देह त्यागना दूर अमरिका में बिन रोग,
समाचार टी० वी० पर सुनकर लेट गया शय्या पर राम,
ग्यारह प्रणवोच्चार पूर्णकर देह त्याग वह गया स्वधाम।

किन्तु आज भी दूर नहीं वह भक्तों के है अतिशय पास,
अनुभव इसका कर देखो यदि मन में हो उसपर विश्वास,
श्रीचरणों में यही वन्दना अन्तिम है मेरी श्रीनाथ,
मङ्गल हो सब प्राणिमात्र का तजो न तुम भक्तों का हाथ।

## लेखक की अन्य रचनाएँ

मौलिक

१. हिन्दी और मराठी का कृष्ण-काव्य
२. त्रिमूर्ति ( व्यंग्य उपन्यास )
३. त्रिपुर सुन्दरी ( उपन्यास )
४. त्रिनयना ( उपन्यास )
५. त्रिरूपा ( उपन्यास )
६. त्रिपथा ( उपन्यास )
७. कुत्ते की दुम ( व्यंग्य-लेखों का संकलन )
८. लाइफ आफ योगी ( जीवनी, अंग्रेजी में )

अनूदित ( मराठी से हिन्दी में )

१. भूमिकन्या सीता ( मामा वरेरकर का नाटक )
२. अपूर्व बंगाल ( मामा वरेरकर का नाटक )
३. और भगवान देखता रहा ( मामा वरेरकर का नाटक )
४. कला के लिए ( मामा वरेरकर का नाटक )
५. सारस्वत ( मामा वरेरकर का नाटक )
६. कोरी करामात ( मामा वरेरकर का नाटक )
७. नट सम्राट ( शिरवाड़कर का नाटक )
८. कालाय तस्मै नमः ( खानोलकर का नाटक )
९. रथचक्र ( श्री ना० पेंडसे का उपन्यास )
१०. राष्ट्रपति महात्मा गांधी ( जीवनी )

( हिन्दी से मराठी में )

११. बाणभट्ट की आत्मकथा ( उपन्यास )
१२. बंच आफ रेमेनिसेसेज ( हिन्दी से अंग्रेजी में )

प्रेस में

१. कविता संकलन ( अब प्रकाशित )
२. त्रिगुणा ( तांत्रिक उपन्यास )

२२८. ४०१२
रु २६९/-



## डा० र० श० केलकर

जन्म-तिथि १४ अगस्त १९२३
जन्म-स्थान बरेली (उत्तर प्रदेश)

साहित्य अकादमी, नई दिल्ली के सचिव डा० र० श० केलकर हिन्दी के मार्मिक कवि और सुविख्यात लेखक हैं। आपने अपने 'त्रिरूपा', 'त्रिनयना', 'त्रिपुरसुन्दरी' और 'त्रिपया' नामक उपन्यासों में जहाँ कामाध्यातम की जटिल गुत्थी को विशुद्ध मनोवैज्ञानिक आधार पर सुलझाने का प्रयत्न किया है वहीं अपने 'त्रिमूर्ति' तथा 'त्रिरूपा' नामक उपन्यासों में आज के समाज की विकृतियों पर खुल कर चोट की है।

आपने गद्य के क्षेत्र में एक सशक्त व्यंग्यकार के रूप में प्रतिष्ठा अर्जित करने के साथ-साथ कविताओं में जिस गहन चिन्तना को प्रस्थापित किया है वह उनकी अनुभूति-प्रवणता एवं संवेदनशीलता का परिचायक है। 'तुम्हारे साथ' काव्य-संग्रह बहुचर्चित है। जीवन में अध्यात्म एवं विचार की प्रक्रिया को अपना कर आपने स्वामी राम के जीवन से जो प्रेरणा ग्रहण की उसी का प्रतिफलन प्रस्तुत पुस्तक में हुआ है। आशा है पाठक इसे सोत्साह अपनायेंगे।

आवरण मुद्रक :- जौहरी प्रिन्टिंग प्रेस
गदौलिया, वाराणसी • फोन 66816